अरुण कमल की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर

(VOICE OF RESISTANCE IN THE POETRY OF ARUN KAMAL)

एम. फ़िल. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक

डॉ. गोबिन्द प्रसाद

सह शोध-निर्देशक

डॉ. रामचन्द्र

शोधार्थी

चन्द्रकान्त सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-११००६७

२००९

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

CENTRE OF INDIAN LANGUAGES

SCHOOL OF LANGUAGES, LITERATURE & CULTURE STUDIES

NEW DELHI- 110067

Dated-07-07-2009

DECLARATION

I declare that the material in this M.Phil. Dissertation entitled- **'ARUN KAMAL KI KAVITAVON MEIN PRATIRODH KA SWAR' (अरुण कमल की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर), 'VOICE OF RESISTANCE IN THE POETRY OF ARUN KAMAL'** submitted by me is original research work and has not been previously submitted for any other Degree of this or any other University/ Institution.

(DR.GOBIND PRASAD)
Supervisor
Centre for Indian Language
School of Language, Literature &
Culture Studies
J.N.U. NEW DELHI-110067

CHANDRA KANT SINGH
(Research Scholar)

06.07.09

(DR. RAMCHANDRA)
Joint-Supervisor
Centre for Indian Language
School of Language,Literature &
Culture Studies
J.N.U. NEW DELHI-110067

(PROF. CHAMAN LAL)
Chairperson
Centre for Indian Language
School of Language,Literature&
Culture Studies
J.N.U. NEW DELHI-110067

समर्पण

उस पिता को–
जिसने बतिया जानकर,
अपने हाथों से दिया मुझको सहारा ।
ममता में आकंठ डूबी,
उस माँ को–
जिसने अपनी अपढ़ आँखों से
पढ़ लिया संसार सारा ।
राह में छोड़ चले,
उन साथियों को–
जिनके लिए,
गरल गर्हित स्वार्थ ही
बस रहा प्यारा ।
स्नेह थकुचे भाव से–
देते रहे जो अन्न–जल,
उन सभी प्रेमी जनों को–
प्राप्त हो,
मेरे जीवन का संचित
ऐश्वर्य सारा ।

अनुक्रमणिका पृष्ठ

भूमिका I-V

पहला अध्याय 01–29

प्रतिरोध का स्वरूप और वर्तमान काव्यपरिदृश्य

(क)प्रतिरोध की अवधारणा

(ख)साहित्य में प्रतिरोध

(ग)समकालीन कविता में प्रतिरोध

दूसरा अध्याय 30–52

अरुण कमल की काव्य दृष्टि

तीसरा अध्याय 53–97

अरुण कमल की काव्य संवेदना और प्रतिरोध के आयाम

(क) सामाजिक प्रतिरोध

(ख) सांस्कृतिक प्रतिरोध

(ग) राजनैतिक प्रतिरोध

चौथा अध्याय 98–119

अरुण कमल का भाषा–शिल्प और प्रतिरोध

(क) अरुण कमल की भाषा में प्रतिरोध की आहटें

(ख) अरुण कमल का शिल्प और प्रतिरोध

उपसंहार 120–124

संदर्भ–सूची 125–132

अपनी कलम, अपने बोल

कविता का मनुष्य के जीवन से गहरा रिश्ता होता है। जीवन की जिन अबूझ समस्याओं से मनुष्य आद्यंत जूझता रहता है, उन समस्याओं से निजात दिलाने में कविताएँ बेहद कारगर सिद्ध होती हैं। जीवन अपने आप में एक दर्शन है,जिसकी खोह में बहुत सारी जिज्ञासाएँ छिपी होती हैं। जीवन दर्शन को समझने बूझने में कविताएँ मित्रवत साथ होती हैं। कविताओं के प्रति गहरे अपनापे ने मुझे विवश किया कि मैं कविता के सहारे जीवन पर शोध करूँ । जीवन की राग वृत्ति को जानने–समझने के क्रम में मेरा परिचय अरुण कमल की कविताओं से हुआ। अरुण कमल की कविताएँ निजी होते हुए भी एक सीमा के बाद निजी नहीं रहतीं,उनका विलय समाज में व्याप्त दु:खों में होता है। अरुण कमल की भावप्रवण कविताओं में शोषणमुक्त समाज का जो सपना है, जो सत्ताविरोधी शांत,मंथर प्रतिरोध है उसने मुझे उन पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। बड़ा ही तोष मिलता है अरुण कमल की कविताएँ पढ़कर। उनकी कविताएँ आज के समय में व्याप्त शोषण, भ्रष्टाचार को तो दिखाती ही हैं, साथ ही एक नए समाज का सपना भी दिखाती हैं, जहाँ आमआदमी के अधिकारों को कोई छीन नहीं सकता। अरुण कमल की कविताएँ अपने समय के यक्ष प्रश्नों से टकराती हैं, सामाजिक वर्जनाओं का विरोध न कर सकने वाली मध्यवर्गीय मानसिकता से प्रश्न करती हैं। समाज में ऊँचे पायदान पर बैठी शक्तियाँ अपने अधिकारों का दुरुपयोग करती हैं। जातिवादी संकीर्णता खत्म होने की जगह लगातार फैल रही है। कौम के नाम पर, जाति के मसले पर जो अराजकता है उन सबके विकल्प में मनुष्य को मनुष्य समझे जाने की तरफदारी ये कविताएँ करती हैं। कई बार जब उम्मीद की किरण नज़र नहीं आती, ऐसे में समाज को बचाए रखने का काम साहित्य करता है। साहित्यिक विधाएँ अनाचार और शोषण का विकल्प खड़ा करती हैं। किस तरह का प्रारूप बने, किस तरह मनुष्यता की रक्षा शोषक पंजों से की जाए, इन सबकी ताकीद कलाएँ करती हैं। कला के स्तर पर जहाँ अरुण कमल की कविताएँ अपने रचाव में अव्वल हैं, वहीं भाषा के स्तर पर कविताएँ बेहद सहज हैं।

अरुण कमल की कविताओं पर शोध करने का मन इसलिए भी बना क्योंकि इनकी कविताओं में एक जातीयबोध है, एक खास तरह की संस्कृति को बचाने का पुरजोर प्रयास है, जिसे बाजार और आधुनिकता अपनी शर्तों पर हड़पने में लगे हुए हैं। इनकी कविताएँ आंचलिक छौंक के साथ समाज का मुआयना करती हैं। बेहद तिलमिलाने वाले, आग लगाने वाले, विध्वंस फैलाने वाले शब्द अरुण कमल के यहाँ नहीं हैं। तोप– गोलों की जगह कवि संवाद की भाषा को हथियार बनाता है। हाशिए पर डाल दी गई शक्तियों को उनके श्रम के सौन्दर्य की याद दिलाकर केन्द्र बनने की चेतना भरने का काम कवि करता है। अरुण कमल का जो काव्यात्मक विकास है उसमें सहजता शुरु से आखिर तक दिखलाई पड़ती है, किसी तरह की कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं। कविताएँ किसके पक्ष में खड़ी हैं, यह साफ साफ दिखलाई पड़ता है। कवि अमूर्त बिंबों और अलक्षित शक्तियों के प्रयोग से बचता है। ठीक ठेठ अंदाज में कवि अपनी ज़र–जमीन से मुख़ातिब होता है। बतौर शोधार्थी मैंने अरुण कमल की मानसिक चेतना को समझने का प्रयास किया है; उनके द्वारा गढ़े शब्दों के पीछे छिपी हुई संस्कृति के पाठ को समझने का प्रयास किया है। आज के पूँजीवादी युग में कलाओं को निगलने का काम सत्ता कर रही है, हरेक चीज़ उत्पाद में तब्दील हो रही है। कलाएँ भ्रम फैलाने और झूठ रचने का माध्यम बन रही हैं। ऐसे में अरुण कमल की कविताएँ चीज़ों को उनके सही नाम से पुकारे जाने की वकालत करती हैं; सच को सच कहने का हौंसला दिलाती हैं। इतना ज़रूर है कि कविताएँ नारेबाजी नहीं करतीं, बन्दूक और लाठी में तब्दील नहीं होतीं, बल्कि मनुष्य की सोई हुई चेतना को स्पर्श करके लौट आती हैं। कविताओं के इसी रुख ने मुझे अरुण कमल पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। सिर्फ कलाओं से प्रतिरोध की माँग क्यों की जाती है? दुनिया में जितनी गन्दगी है, उसमें उतरने का प्रयास सिर्फ कवि करे, कवि से यह आशा की जाए कि वह संसार के सारे गरल को पीकर आदर्श स्थापित करे, यह कैसे सम्भव है? आखिर कवि भी साधारण इंसान है, उसे भी अपनी जिन्दगी जीने का मौका मिलना चाहिए। बतौर कवि अरुण कमल संघर्ष रचते हैं, किन्तु साथ ही साथ उनके काव्यजगत में प्रेम का अनाविल सागर भी हहराता दिखाई पड़ता है। कवि सबके

सुख की कामना करता है। जहाँ व्यापक सुख बाधित होता है, वहाँ कवि बेलौस होकर आवाज़ मुखर करता है। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में अरुण कमल की कविताई को समकालीन प्रश्नों से जोड़कर देखने का प्रयास किया है; अरुण कमल की कविता में प्रतिरोध के जो विभिन्न पड़ाव हैं, उनको सही मानी के साथ समझने का प्रयास किया है। शोध प्रबन्ध चार अध्यायों में विभक्त है।

पहला अध्याय 'प्रतिरोध की अवधारणा और वर्तमान काव्यपरिदृश्य' नाम से है, जिसमें क्रमशः तीन उप अध्याय हैं–

(i) प्रतिरोध की अवधारणा:– इस उप अध्याय में प्रतिरोध की अवधारणात्मक समझ पर विचार किया गया है; साथ ही प्रतिरोध शब्द को पश्चिम में किस तरह जाना और समझा गया, प्रतिरोध को देखने–समझने के कितने कोण हो सकते हैं, इस पर भी विचार किया गया है।

(ii) साहित्य में प्रतिरोध:– इस उप अध्याय में इस बात की पड़ताल की गई है कि साहित्य किस तरह प्रतिरोध करता है। क्या साहित्य का कार्य केवल विखण्डन है, या साहित्य कोई विकल्प भी बन सकता है, जिससे अनाचार और शोषण खत्म हो? साहित्य के द्वारा किस तरह प्रतिरोध दर्ज होता है,इस बात की समीक्षा समकालीन पाश्चात्य साहित्य के मद्देनजर की गई है।

(iii) समकालीन कविता में प्रतिरोध:– समकालीन कविता किस तरह अपने समकालीन प्रश्नों से जूझती है,समकालीन कविता में किस रूप में प्रतिरोध की आवृत्ति होती है, इसे जानने–समझने का प्रयास इस उप अध्याय में किया गया है।

दूसरा अध्याय 'अरुण कमल की काव्य दृष्टि' नाम से है, जिसमें अरुण कमल की रचना प्रक्रिया पर विचार किया गया है। कविता और उसकी आलोचना को लेकर एक कवि की क्या दृष्टि होती है, इसे इस अध्याय में दिखाया गया है।

तीसरा अध्याय 'अरुण कमल की काव्य संवेदना और प्रतिरोध के आयाम' नाम से है। इसे तीन उप अध्यायों में बाँटा गया है–

(i) सामाजिक प्रतिरोध

(ii) सांस्कृतिक प्रतिरोध

(iii) राजनैतिक प्रतिरोध

तीसरे अध्याय के उपर्युक्त तीनों उप अध्यायों में दिखाया गया है कि अरुण कमल की कविताएँ किस तरह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक गुलामी का प्रतिरोध करती हैं। इन उप अध्यायों में अरुण कमल की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि वाली कविताएँ रखी गई हैं और उनका विश्लेषण समाज सापेक्ष किया गया है।

चौथा अध्याय 'अरुण कमल का भाषा–शिल्प और प्रतिरोध' नाम से है जिसमें क्रमशः दो उप अध्याय हैं –

(i) अरुण कमल की भाषा में प्रतिरोध की आहटें

(ii) अरुण कमल का शिल्प और प्रतिरोध

चौथे अध्याय के उपर्युक्त दोनों उप अध्यायों में अरुण कमल की भाषा और शिल्प को लेकर विचार किया गया है। अरुण कमल की भाषा में आई सपाटबयानी और शिल्प के स्तर पर बरती गई सहजता का विश्लेषण उपर्युक्त दोनों अध्यायों में किया गया है।

हालाँकि कविता से मेरी गहरी सम्पृक्ति रही है, और इसी वजह से शोध हेतु मैंने कविता को चुना। यह बात अलग है कि मुझे दोहरा लाभ मिलता रहा। एक तरफ कविता का स्नेह प्राप्त हुआ, वहीं गुरूवर गोबिन्द प्रसाद का सान्निध्य, जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व ने चित्रकार, गीतकार और कवि के नज़रिए से कविता को जानने–समझने की दृष्टि प्रदान की । हालाँकि शोध–कार्य शुरु करने के बाद असमय ही गुरुदेव को शिक्षणार्थ बुल्गारिया जाना पड़ा, जिसकी वजह से गुरुवर गोबिन्द जी का पर्याप्त प्यार न मिल सका, फिर भी गुरु के न होने की कमी महसूस न हुई, क्योंकि बड़े भाई सदृश गुरुवर रामचन्द्र ने अभिभावक और गुरु दोनों की भूमिका का निर्वाह किया। गुरु ऋण से उऋण होना असंभव है, इसलिए दोनों ही गुरुजनों के प्रति मेरी श्रद्धा अर्पित है । इन दोनों के प्रति आभार ज्ञापित करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, केवल इतना ही कह सकता हूँ कि गुरु द्वारा दी गई सीख पर आँच नहीं आने दूँगा ।

शोध–कार्य शुरु करने के बाद जो थोड़ी बहुत दिक्कतें आईं उनका समाधान करने में भाई राजेश जी और दीदी कल्पना का विशेष सहयोग रहा, जिसे कभी नहीं भुलाया जा सकता । फ़िलहाल आभार ज्ञापित करके इन्हें उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होने दूँगा, आगे भी इन्हें बड़े होने का उत्तरदायित्व निभाना है । शोध–कार्य की लिपिगत साज–सज्जा और तथ्यों को एक रेखीय व्यवस्था देने के लिए बड़े भाई इकबाल ज़िया का तहे–दिल से आभारी हूँ जिन्होंने अत्यंत व्यस्त होते हुए भी अपना आशीर्वाद प्रदान किया ।

शोध को गम्भीरता से लेने के लिए सुरजीत भैया और नेहा दीदी की प्यार में पगी डाँट न होती तो शायद मैं बेहद अकेला पड़ जाता । बीच–बीच में मित्र विनोद मीणा से हुई वैचारिक असहमतियों ने भी वैचारिक दृढ़ता प्रदान की, इसके लिए मित्र का आजीवन आभारी रहूँगा ।

चन्द्रकान्त सिंह

पहला अध्याय

प्रतिरोध का स्वरूप और वर्तमान काव्य परिदृश्य

(क) प्रतिरोध की अवधारणा

(ख) साहित्य में प्रतिरोध

(ग) समकालीन कविता में प्रतिरोध

पहला अध्याय

प्रतिरोध का स्वरूप और वर्तमान काव्य परिदृश्य

(क) प्रतिरोध की अवधारणा

एक ओर प्रतिरोध की अवधारणा, एक गहरे अर्थ में, मनुष्य के साथ जन्मी, और मनुष्य की अवधारणा से अविनाभाव जुड़ी हुई प्रतीत होती है । मनुष्य जैसे अपनी परिभाषा में ही एक प्रतिरोधक प्राणी प्रतीत होता है । अगर हम उसके द्वारा गढ़ी गई सभ्यता और संस्कृति का इस खास दृष्टि से पुनरावलोकन करें, तो उसकी इस रचनात्मकता के समूचे इतिहास को प्रतिरोध के इतिहास के रूप में देखा जा सकता है।

(लेखक–मदन सोनी, प्रतिरोध और साहित्य)

प्रतिरोध का सीधा–सीधा अर्थ है–विरोध या बाधा[2], लेकिन विरोध या बाधा मात्र कहने से प्रतिरोध को स्पष्ट नहीं किया जा सकता । विरोध के भीतर विज़न नहीं होता, जबकि प्रतिरोध का एक ख़ास विज़न होता है जिसके तहत विरोध दर्ज होता है । यूँ तो प्रतिरोध की शुरूआत ही सृष्टि के जन्म के साथ होती है । मनुष्य ने जो भी सफलता अर्जित की, जो नया मुकाम हासिल किया, उसे प्राप्त करने में उसे एक लम्बी अवधि लगी। और इस अवधि में मनुष्य ने सबसे प्रबल शक्ति के तौर पर प्रकृति का सामना किया । प्रकृति द्वारा संचालित जलवायु एवं मौसम को जाँचने–परखने की जितनी प्रविधियाँ मनुष्य द्वारा प्रयुक्त हुईं, उन सबमें प्रतिरोध के अक्स देखे जा सकते हैं । आदिम काल से गर प्रतिरोध को जोड़ कर देखें तो प्रस्तर काल से लेकर आधुनिक काल तक जो कुछ भी मनुष्य द्वारा रचा गया है, उसमें प्रतिरोध की झाँकी बखूबी मिल

[1]http:// pratilipi.in/2008/04 pratirodh –aur sahity-madan-soni
[2] सम्पादक –रामचन्द्र वर्मा, 'हिन्दी का प्रामाणिक शब्दकोश', पृष्ठ–५३८

सकती है । एक बहुत महत्वपूर्ण बात, जिसकी ओर इशारा करना लाज़िमी होगा, वह यह कि प्रतिरोध का सम्बन्ध वर्चस्व के नकार से है । प्रतिरोध का सम्बन्ध शक्ति के रूपान्तरण से है । प्रतिरोध का सम्बन्ध ऐतिहासिक द्वन्द्व से है । काल की गति के साथ प्रतिरोध में तेजी आई और उसकी गति के साथ–साथ प्रतिरोध की धुरी बदलती रही है । इतिहास गवाह है कि कभी प्रतिरोध प्रकृति की शक्ति को ध्वस्त करने के लिए होता रहा, परिणामस्वरूप नये–नये आविष्कार हुए; कभी प्रतिरोध राजतन्त्र के शोषक पँजों से जनता की मुक्ति के लिए होता रहा, फलतः लोक की अवधारणा विकसित एवं परिवर्धित हुई ।

इस तरह से अब तक का जो भी इतिहास रहा है, वह प्रतिरोध का इतिहास रहा है, क्योंकि गाहे–बगाहे मनुष्य ने एक लम्बी कालावधि से वर्चस्व को ही चुनौती दी है । जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि मनुष्य शुरू से प्रतिरोधी रहा है, लेकिन ख़ास बात यह है कि उसके प्रतिरोध में तेजी सोलहवीं शताब्दी में आई । इससे पहले मनुष्य ने प्रकृति के साथ संघर्ष किया था, लेकिन तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी के आते–आते शोषित–प्रताड़ित मनुष्य समझने लगा था कि धर्म और नैतिकता के नाम पर मनुष्य ही उसका दमन कर रहा है; उसकी आवाज़ को कुन्द करने का प्रयास सत्ता और धर्मगुरू दोनों ही कर रहे हैं। तब मनुष्य ने अपनी चुप्पी तोड़ी और बुद्धि–विवेक पर लगाए गए पहरों को खत्म किया । इस तरह व्यक्तिगत ज्ञान के धरातल पर पहली बार प्रतिरोध को दिशा सोलहवीं सदी में मिली, जब मनुष्य ने मध्यकालीन रुढ़ियों और अज्ञानता के खिलाफ पहली बार सशक्त प्रतिरोध दर्ज किया। परिणामतः पुनर्जागरण के माध्यम से पूरे विश्व भर में मनुष्य पर लगाई गई लगाम की जकड़बन्दी ढीली हुई ।

सोलहवीं शताब्दी सिर्फ इसलिए ही नहीं जानी जाती कि मनुष्य ने धर्म व धर्मसत्ता के ख़िलाफ़ आवाज़ तीव्र की थी या फिर नए–नए देशों की खोज की थी, बल्कि इसलिए भी कि यहाँ से ज्ञान के नए युग की शुरूआत होती है । प्रतिरोध शब्द को परिभाषित करने का काम भी सोलहवीं शताब्दी में ही सम्भव हो सका । सोलहवीं शताब्दी के धार्मिक युद्ध के समय फ्रेंच राजनीतिज्ञों ने प्रतिरोध को परिभाषित किया । उनके प्रतिरोध की सैद्धान्तिकी तीन तत्वों के संयोजन से बनी थी– रोमन, चर्च, और

मध्यकालीन कानून ।[3] प्रतिरोध शब्द का बतौर प्रतिरोधी अर्थ में प्रयोग 1548 ई. में प्राप्त होता है । ईटिन्ने डे ला बोएटी नाम के फ्रेंच विद्यार्थी ने, जो कानून की पढ़ाई कर रहा था 'डिस्कोर्स सुर ला सरविट्यूड वोलोन्टैर' नामक अपने ग्रन्थ में प्रतिरोध की तर्कसंगत संभावना पर बल दिया और बताया कि प्रतिरोध का आशय अत्याचारी वर्ग के विरोध से है ।[4]

समकालीन अनुशासनों, ख़ास तौर पर सामाजिक संस्थानों आदि ने प्रतिरोध की परिभाषिकी तय करने का प्रयास किया, प्रतिरोध शब्द के अवधारणात्मक पहलू पर ध्यान दिया, लेकिन यह बेहद दु:साध्य कार्य रहा कि एक भी सही परिभाषा न मिल सकी । पाश्चात्य जगत के विभिन्न विद्वानों ने प्रतिरोध शब्द की अपने-अपने हिसाब से व्याख्या की । मसलन हार्डिन ने प्रतिरोध का आशय गुम हुई पहचान की रक्षा के अर्थ में किया। आज के उत्तरसाम्राज्यवादी दौर में प्रतिरोध की अलग-अलग संभावनाएँ हैं । बतौर उदाहरण, गर सबाल्टर्न इतिहास को लें तो भाभा (1984), हेलगेसन(1999), मिनहा (1987), स्पिवाक(1988) आदि विद्वानों का मानना है कि प्रतिरोध राएटिंग बैक का नारा था जो कि उत्तरसाम्राज्यवादी दौर के प्रतिविमर्श के तौर पर सामने आया । नारीवादी अध्ययन प्रतिरोध को दूसरी तरह से देखता है । एलेन (1998), ब्रायतोदी (1994), ब्राउन (1988), बटलर (1990) और फर्गुसन आदि विद्वानों का मानना है कि यह (प्रतिरोध) पितृसत्ता और लैंगिक मानदण्डों के ख़िलाफ़ आन्दोलन है।[5] यही नहीं, मेराबल(2002) जैसे विद्वान प्रतिरोध को नस्लवाद के विरोधी अर्थों में लेते हैं। एक तरह से यही कहा जा सकता है कि प्रतिरोध शब्द को परिभाषाओं में सीमित नहीं किया जा सकता ।

प्रतिरोध को देखने और जानने की कई दृष्टियाँ हो सकती हैं । यह आप पर निर्भर करता है कि आप प्रतिरोध को किस तरह देखते और समझते हैं । जिस तरह मार्क्सवाद की व्याख्या देश विशेष की सामाजिक संरचना पर निर्भर करती है, ठीक वैसे ही प्रतिरोध की व्याख्या देश-काल, वातावरण पर निर्भर करती है । हाँ, इतना ज़रूर है कि प्रतिरोध के केन्द्र में शक्ति है और शक्ति रूपान्तरण या शक्ति स्थापन ही प्रतिरोध है । कहीं शक्ति

---

[3] www.resistancestudies.org/files/vinthagen & lilja resistance.doc
[4] www.resistancestudies.org/files/vinthagen & lilja resistance.doc
[5] www.resistancestudies.org/files/vinthagen & lilja resistance.org.doc

विस्थापन सर्वहारा को लेकर है तो कहीं स्त्रियों के मान–सम्मान और अधिकार को लेकर । प्रतिरोध के लिए प्रतिबद्धता अनिवार्य होती है, बिना प्रतिबद्धता के प्रतिरोध अशक्त और प्राणहीन होता है। मोनालिल्जा अपने लेख 'थियोराएजिंग रजिस्टेंस: मैपिंग, कनक्रेटिस्म एन्ड यूनिवर्सलिज्म' में लिखती हैं कि प्रतिरोध प्राथमिक रूप से उत्तरसाम्राज्यवादी दौर की अवधारणा है, जो उत्तरसाम्राज्यवादी सत्ता को दर्शाती है ।[6] मोनालिल्जा यह भी मानती हैं कि प्रतिरोध केवल तथ्यों का पुलिन्दा नहीं होता, बल्कि लोगों की सक्रिय भागीदारी द्वारा विरचित होता है । प्रतिरोध बेहद व्यापक शब्द है, इसे महज चलताऊ ढँग से परिभाषित नहीं किया जा सकता ।

प्रतिरोध शब्द के भीतर इच्छित विश्वास, दृढ़ संकल्प शक्ति छिपी होती है । सत्ता अपने ढँग का दमनात्मक अवरोध जन सैलाबों को दबाने के लिए खड़ा करती है । सवाल यह उठता है कि क्या सत्ता द्वारा रचे छद्म जाल को प्रतिरोध कह सकते हैं ? उत्तर होगा, हरग़िज नहीं । सत्ता बेहद निर्दयतापूर्वक आमजन की एकजुटता को दमित करती है। उसमें एक प्रकार का नकार छिपा होता है, एक प्रकार का अवरोध होता है, लेकिन इसे प्रतिरोध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सत्ता अपने निहित स्वार्थ के लिए हजारों लोगों को उत्पीड़ित करती है । श्रीराम त्रिपाठी ने सत्ता के चरित्र के विषय में क्या खूब फरमाया है कि "सत्ता यथार्थ की गतिशीलता पर भ्रम का पर्दा डालती है । ऐसा वह कभी पुचकारकर करती है, कभी डराकर । कभी शुभ चिन्तक बनकर करती है, कभी अतीत का बखानकर भविष्य का भ्रमजाल बुनती है । वह मनुष्य को एकदम अकेला कर देने में जुटी है । बुद्धि और विज्ञान के विकास के साथ–साथ उसने शोषण और उत्पीड़न के सूक्ष्म और अमूर्त हथियारों को जन्म दिया है ।"[7] प्रतिरोध के चिन्ह सदैव जनसंघर्षों के बीच देखे जा सकते हैं ।

इतिहास गवाह है कि जब–जब वर्चस्वशील वर्ग ने आमजन की जिन्दगी को हाशिये पर डालने का काम किया, उनके जीवन मूल्यों के आगे सवाल खड़ा किया, तब–तब अपनी अस्मिता एवं अपने मान सम्मान के लिए जनसामान्य ने बड़ी लड़ाईयाँ लड़ी हैं । जन सामान्य द्वारा लड़ी लड़ाईयों में बखूबी प्रतिरोध के अक्स देखे जा सकते हैं ।

---

[6] Editor- Christopher Kullenberg, 'Resistance studies Magazine, Issue 1-2009, page-04

[7] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२४३

एक तरह से यह कहा जा सकता है कि वर्चस्वशील शक्तियों के शोषण एवं दमन के बरक्स मानवीय अस्मिता की हिफ़ाजत के लिए लड़ी जा रही हकबन्दी की लड़ाई ही प्रतिरोध है, जिसके बीज बिन्दु समता, स्वतन्त्रता एवं बंधुत्व हैं । प्रतिरोध की संस्कृति अपने गर्भ में एक नये समाज का सपना संरक्षित रखती है । उसका काम विखण्डन नहीं है बल्कि मनुष्य को मनुष्य के रूप में समझे जाने की तरफ़दारी है । हाँ, इतना ज़रूर है कि प्रतिरोध के अलग-अलग सिद्धान्त हो सकते हैं, मसलन हँगरी के बुद्धिजीवी कार्ल पोलेनी, इटली के विचारक अंतानियो ग्राम्शी, जेम्स.सी.स्काट जैसे विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि के तहत प्रतिरोध को समझा है । जहाँ पोलेनी ने मुक्त बाज़ार को लेकर प्रतिरोध की बात उठाई वहीं ग्राम्शी ने पूँजीवाद के हेजेमनी के बरक्स सबाल्टर्न्स के पक्ष में अपनी राय दी । नव मार्क्सवादी विचारक जेम्स.स्काट वैयक्तिक प्रतिरोध पर जोर देते हैं, क्योंकि उनको विश्वास है कि रोज़ के जनान्दोलनों से ही समाज की दिशा बदली जा सकती है।[8] इन सारे विचारकों ने अपनी-अपनी तरह से आमव्यक्ति के प्रति अपनी संवेदना ज्ञापित की है । अत: इतना तो तय है कि प्रतिरोध की आवाज़ सर्वहारा के पक्ष में खड़ी होती है । प्रतिरोध की संस्कृति उन प्रतिष्ठानों पर धावा बोलती है जो मनुष्यता को ध्वस्त करने के लिए खड़े किए जाते रहे हैं । किसी भी देश की सामाजिक व्यवस्था में सारे के सारे अधिकार चंद लोगों के हाथों में रहते हैं और ये चंद हाथ मानव की बेहतरी की बात करते हुए भी उन सारे कामों को अंजाम देते हैं जो मानव विरोधी होते हैं । सत्ता और जनता का संघर्ष इसी को लेकर है । सत्ता अपनी सुरक्षा के लिए लाखों लोगों की ज़िन्दगी दांव पर लगाती है, खूनी खेल खेलती है । इस खूनी खेल में ग़र कोई आहत और छिन्नतार होता है तो वह मानवता है ।

बात यदि भारत की करें तो हम पाएँगे कि मनुष्य की बेहतरी के लिए बनाई गई वर्णव्यवस्था ने मनुष्य को लाचार और बेबस ही बनाया है । समता और समानता की दुहाई देने वाले इस देश में शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति सदा से ही सोचनीय रही है । न तो उन्हें वेद पाठ का ही अधिकार था और न ही उन्हें इतनी स्वतन्त्रता थी कि वे मनोनुकूल जीवन जी सकें । पशु से भी हेयतर उन्हें समझा जाता था । वैदिक काल से

---

[8] सुंदरचंद ठाकुर, 'समयांतर पत्रिका', फरवरी २००८, पृष्ठ-१६

अब तक की मनुष्य की इस जययात्रा में गर कुछ तीव्रतर हुआ है तो वह है स्त्रियों और दलितों का शोषण । यह कैसी मर्यादा है जिसने निर्ममता से सारे पासे अपने पक्ष में फेंके हैं । परिभाषा बनाने वाले भला कैसे मनुष्य को उसकी मनुष्यता से बाहर ढकेल सकते हैं ! परिभाषाएँ सृजित करने वालों की निगाह में आज भी स्त्री महज एक खिलौना है । और क्या होंगे अभी ? नामक अपने लेख में डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं कि "परिभाषाओं पर एकाधिकार रखने वाली सत्ता की निगाह में आज भी स्त्रियों और कमेरों की क्या हैसियत है, सो हम जानते हैं । बीच-बीच में कोशिशें ज़रूर हुई हैं कि परिभाषा करने का सवर्ण पुरुष का एकाधिकार टूटे । दरअसल इन्हीं कोशिशों का नाम इतिहास है । और इन कोशिशों को ज़ारी रखने का मतलब है-सतत आत्मावलोकन ।"[9]

निश्चित तौर पर सतत आत्मावलोकन के द्वारा ही रुढ़िवादी शक्तियों के भ्रमजाल को तोड़ा जा सकता है, सतत आत्मावलोकन के द्वारा ही ऐसी चेतना हासिल की जा सकती है

जिससे वर्चस्व की राजनीति को ध्वस्त किया जा सकता है ।

बहरहाल, आज का दौर विमर्शों का है और इस विमर्श कारी समय में प्रतिरोध के माध्यम से सार्थक पहल की जा रही है कि अस्मिताओं की सुरक्षा की जाए, मनुष्य के जीवन-स्तर में घुन लगाने वाली शक्तियों को बेनकाब किया जाए । यह हमारे समय का क्रूर यथार्थ है कि आज भी जातिवादी शक्तियाँ फल-फूल रही हैं और अस्पृश्यता छतनार लतर फैला रही है । वर्ण व्यवस्था में ऊँचे पायदान पर बैठा पुरोहित वर्ग अपने भाग्य पर इतराता है, मर्यादा की बड़ी बड़ी लकीरें खींचता है और प्रारब्ध कर्मों का फल भोगता तबका अपनी नियति पर आँसू बहाता है । इस तरह हम देख सकते हैं कि केन्द्र और परिधि की लड़ाई कोई नई नहीं है, प्रतिरोध का स्वर कोई नया नहीं है । जब-जब स्त्रियों और दलितों को दोयम दर्जे का समझ कर उनका उत्पीड़न किया गया, तब तब उनकी अस्मिता और सुरक्षा के लिए प्रगतिशील ताकतें आगे आईं । इन प्रगतिशील ताकतों द्वारा मनुष्य की बेहतरी के लिए ली गयी चुनौती ही प्रतिरोध है ।

---

[9] पुरुषोत्तम अग्रवाल, 'संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध', पृष्ठ-४९

प्रतिरोध की अवधारणा को यदि समसामयिक संदर्भों में रखकर देखें तो इसे बहुत बेहतर ढंग से समझा जा सकता है । हाल ही में अभी नन्दीग्राम और सिंगूर में किसानों का अपनी-अपनी ज़मीनों के बचाव को लेकर छेड़ा गया जनान्दोलन प्रकाश में आया है। इन जनान्दोलनों के पीछे भी वही वर्चस्वशाली शक्तियाँ हैं, जो विकास और उन्नति के नाम पर लोगों का गला घोंटती हैं । कई बार ये वर्चस्वशाली शक्तियाँ एक खोल धारण करती हैं और उसे ओढ़ कर अपनी चालबाजियों को अंजाम देती हैं । इस तरह उत्पीड़ित वर्ग यह नहीं जान पाता कि उसकी स्थिति का जिम्मेदार कौन है । जिसे वह अपना भलाई करने वाला, अपना हितैषी समझता है, पता चलता है वही उसे खाकर हजम कर जाता है । आज के इस पूँजीवादी समय में जहाँ जीवन पहले से अधिक जटिल होता जा रहा है, वहीं संघर्षों की गुंजाइश भी पहले से बढ़ी है, क्योंकि आज प्रतिरोध केवल सत्ता से नहीं है, बल्कि आज प्रतिरोध बाजार से है। आज प्रतिरोध विषमतामूलक समाज से है । प्राय: प्रतिरोध दो तरह का होता है-

(i) हिंसात्मक प्रतिरोध

(ii) अहिंसात्मक प्रतिरोध

हिंसात्मक प्रतिरोध भी एक ज़रिया है, मगर इसका प्रयोग तब करना चाहिए जब कोई विकल्प न हो और सत्ता का दमन तेज हो रहा हो । पाश्चात्य विद्वान मलूकी के अनुसार सामाजिक निर्माण की प्रक्रिया में हिंसक प्रतिरोध भी एक घटक हो सकता है । हिंसा, अन्य समूहगत सक्रियता की तरह लाभ और जोखिम पर आधारित गणना है और यह महत्वपूर्ण साध्यों के लिए ही उचित है ।[10] भरसक प्रयास करना चाहिए कि प्रतिरोध अहिंसक हो क्योंकि आत्मबोध और जनजागरण के द्वारा वर्चस्व को तोड़ना अन्यतम उपलब्धि है, बजाय इसके कि हिंसा और लूट का मार्ग स्वीकार किया जाय । हिंसात्मक प्रतिरोध से समाज जुड़ता नहीं बल्कि टूटता है । आँख के बदले आँख और हत्या के बदले हत्या की प्रवृत्ति महज प्रतिक्रिया होती है जबकि प्रतिरोध का लक्ष्य व्यवस्था-परिवर्तन और क्रांति लाना होता है । हिंसक क्रांति का परिणाम और अधिक हिंसा में होता है क्योंकि यह क्रिया-प्रतिक्रिया के नियम से चालित होती है ।[11] जातिवादी खेमे को

---

[10] Editor- Christopher Kullenberg, ' Resistance Studies Magzine, Issue 1-2009

[11] -सम्पादक-पंकज विष्ट, समयांतर पत्रिका, फरवरी२००८, पृष्ठ-३५

निर्मूलित करने का कत्तई आशय नहीं है कि उसके जवाब में जातिवाद को खड़ा किया जाए, क्योंकि विषमता का जवाब विषमता से नहीं दिया जा सकता । अपने लेख 'जातिवादी कौन?' में डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने सही लिखा है कि " जातिवाद के सच्चे विरोधियों के लिए भारतीय इतिहास का पहला सबक यह है कि द्विज जातिवाद का जवाब गैर द्विज जातिवाद नहीं हो सकता । चुनौती जाति-व्यवस्था के वैचारिक-सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती देने और उसके सामाजिक राजनीतिक ढाँचे को ध्वस्त करने की है । तंत्र वही बना रहे; सिर्फ उसके अधिकारी और उपभोक्ता बदल जायें, यह नहीं चलने वाला । किसी भी अन्याय का प्रतिकार वैसा ही अन्याय करके नहीं किया जा सकता । ज़रूरत अन्याय की संभावना मात्र का निषेध करने की है ।"[12]

आज के संदर्भ में ग़र बात करें तो पाएँगे कि आज शोषण के ढंग में बदलाव आया है । आज सिर्फ जाति के आधार पर ही शोषण नहीं हो रहा है, बल्कि आज धर्म, संस्कृति, बाजार के स्तर पर भी शोषण हो रहा है । आज का शोषक वर्ग जानता है कि उसकी नीतियों को एक बड़ा तबका धता बता कर निकल जाएगा । यही वजह है कि उसने एक तरफ दमन की आग तेज की है, वहीं कलाओं को हथिया कर उनका प्रयोग भी वह अपने पक्ष में कर रहा है । शोषक वर्ग का समुचित जवाब देने के लिए प्रतिरोधी शक्तियों को भी संगठित होना पड़ेगा, वरना आज का शोषक वर्ग साधारण वर्ग के हथियारों से साधारण जनसमूह का ही विनाश कर देगा ।

यदि वैश्विक स्तर पर देखें तो इस समय दुनिया भर में करीब दस हजार से भी अधिक जनान्दोलन चल रहे हैं[13], जो मानव की अस्मिता एवं पहचान को लेकर कार्यरत हैं। उदाहरण के तौर पर, 1 जनवरी 1994 ई. को गठित 'कोलना जैपटिस्टास' या 'एजिन' नाम के संगठित गुरिल्ला समूह को देखा जा सकता है जो विश्वभर में सताए गए भारतीयों की सुरक्षा को लेकर सक्रिय है, चाहे मामला सऊदी अरब के ईसाई समूह का हो या स्कैन्डीनाविया के बेघर समूह का या फिर यू.एस.ए. के मुस्लिम समूह का । यह संगठन कहीं भी भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों की कलई खोलता है । इस संगठन ने शस्त्र भी विकसित किए हैं, लेकिन उनका प्रयोग वह शोषितों, वंचितों की सुरक्षा के

---

[12] डा. पुरुषोत्तम अग्रवाल, 'संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध', पृष्ठ-१०६

[13] www.Resistancestudies.org/files/vinthagen & lilja resistance.doc

लिए करता है । इस तरह प्रतिरोधी शक्तियों को वैयक्तिक, सामूहिक जैसे भी हो सके, वर्चस्ववादी सत्ता का प्रतिकार करना चाहिए । लेकिन इतना भान अवश्य हो कि प्रतिरोध के बाद निर्माण किया जाए, पूरी शक्ति केवल विखण्डन में ही न लगे, बल्कि शोषणमुक्त समाज के निर्माण में भी ऊर्जा खर्च हो, तभी प्रतिरोध की अवधारणा को सही दिशा मिल सकेगी ।

(ख) साहित्य में प्रतिरोध का स्वर

साहित्य में प्रतिरोध पर बात करने से पहले यह जानना अति आवश्यक है कि साहित्य है क्या और यह किस तरह दुनियावी सवालों से दो चार होता है । साहित्य को परिभाषित करते हुए अरुण कमल कहते हैं –"साहित्य महत्तम समापवर्त्य की खोज है । उसी महत्तम समापवर्त्य की खोज हमारा लक्ष्य है । जो अब तक का हमारा श्रेष्ठ साहित्य है वह सबका है । किसी एक जाति, धर्म, क्षेत्र या किसी नृप का नहीं, सर्वसाधारण का है।"[14] साहित्य का मूल सरोकार है बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय । साहित्य चंद लोगों का कुशलक्षेम नहीं चाहता उसके लिए व्यापक हित महत्वपूर्ण होता है । दुर्भाग्यवश अधिकांश साहित्यकार राजन्यवर्ग को संतुष्ट करने के लिए साहित्य का सीमित अर्थों में प्रयोग करते रहे हैं । सत्ता तय करती रही है कि क्या लिखा जाना चाहिए । पुर्नजागरण से पहले तक जो कुछ भी विश्वसाहित्य के नाम पर लिखा जाता रहा, वह कैथोलिक चर्च की प्रशंसा में लिखा जाता रहा, किसी भी व्यक्ति को इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त न थी कि वह कुछ बोल सके। ऐसे में ज्ञान–विज्ञान का रास्ता बंद सा हो गया । साहित्यकारों ने वही लिखा जो सत्ता चाहती थी । एक खास तरह की हेजेमनी गढ़ी गई और साहित्य उस हेजेमनी का वाहक बना । हालाँकि, कई बार छिटपुट प्रयास अवश्य हुए कि साहित्य को वर्चस्वशील शक्तियों से आजाद कराया जाए पर ऐसी लहर सत्तापक्ष के आगे नाकाफी थी । फिर भी इतिहास गवाह है कि सामन्तवादी युग में भी साहित्य ने अपनी कारगर भूमिका निभाई है । यूरोप में पुनर्जागरण की लहर के आने के बाद सामन्तवादी शक्तियाँ शिथिल पड़ने लगीं । ज्ञान पर लगा अंकुश समाप्त हो गया और मनुष्य ने नई–नई तरकीबें ईजाद कीं । बतौर प्रतिरोध, पुनर्जागरण की लहर को देखा जा सकता है । धर्मसत्ता की खोखली जड़ों का बुद्धिजीवियों ने प्रत्याख्यान किया, साथ ही दूर देशों के भ्रमण द्वारा ज्ञान–विज्ञान की परम्परा का, कला का प्रसार हुआ । यदि ज्ञानवादी प्रत्यय का प्रयोग किया जाए तो मनुष्य के विवेक को झंकृत करने के कारण पूरी सोलहवीं सदी को प्रतिरोध की सदी कहा जा सकता है । मानववादी साहित्य की रचना के केन्द्र में प्रतिरोध की परिकल्पना ही कार्यरत थी, जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती ।

---

[14] अरुण कमल, कविता और समय, पृष्ठ– २०८

अठारहवीं सदी तक पूरे यूरोप में जो ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी वह शास्त्रीय थी । परम्परागत विषयों की पढ़ाई होती थी, साथ ही सामन्तवादी शिक्षाप्रणाली पहले की भाँति चली आ रही थी । ब्रिटिश, अमेरिका, जर्मन और विशेष रूप से बहुत सारे फ्रेंच विभागों ने साहित्य के स्तर पर अभिजातीयता को बढ़ावा दिया । सहारा अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका, वियतनाम और करीबियन साहित्य को मुख्यधारा से काट कर रखा गया । साहित्य के नाम पर अमेरिकन संस्थानों ने भी जनसामान्य के साहित्य से विद्यार्थियों को वंचित रखा। मोरक्कन लेखक अब्दुल कबीर ख़तीबी ने अपनी पुस्तक 'मग़रिब प्यूरिएल' में निर्दिष्ट किया कि " पाश्चात्य आलोचना में प्रतिरोध के साहित्य का भी मुद्दा उठाया जाना चाहिए ।"[15] उसके बाद पाश्चात्य जगत में साहित्यिक स्तर पर एक नया विवाद उठ खड़ा हुआ, जिसके केन्द्र में शोषित–वंचित वर्ग को रखा गया । 'डेनिश ब्रुटश' नामक विद्वान ने प्रतिरोध की आवश्यकता पर यह कहकर ज़ोर दिया कि 'अभी बहुत कुछ होना बाकी है'[16] बहुत कुछ होने से आशय यह था कि साहित्यिक स्तर पर अब सामान्य वर्ग की पीड़ा और असंतोष को भी व्यक्त किया जाना चाहिए । यह नहीं कि चन्द लोगों के सुख को ही साहित्य समझा जाए । इस तरह पहली बार साहित्य में प्रतिरोध की ज़रूरत पर बल दिया गया । यदि विश्व साहित्य के परिप्रेक्ष्य में प्रतिरोध को रखकर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी में उपनिवेशवादी ताकतों के ख़िलाफ़ मजदूरों के जनान्दोलनों ने साहित्य के स्तर पर प्रतिरोध की धारा को उन्मुख करने में सहायता की । बार्बरा हार्लो का मानना है कि " राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन और स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान बीसवीं शताब्दी में विश्वभर में ख़ासकर यूरोप और अमेरिका में साहित्य के स्तर पर प्रतिरोध की आवाज़ गूँज उठी । आख्यान और कविता दोनों ही क्षेत्रों के साथ–साथ राजनीतिक, वैचारिक और सांस्कृतिक मापदण्ड संघर्षों के आधार पर बनाए गए ।'[17] साहित्य में प्रतिरोध शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1966 ई. में फिलीस्तीनी लेखक हसन कानाफ़ानी के द्वारा हुआ । मिस्र और जोर्डियन की सेनाओं की इजरायली सेना द्वारा हुई पराजय की याद में 'तहत–अल–हिलाल' नामक प्रतिरोधी साहित्य की रचना कानाफ़ानी ने की । कानाफ़ानी का अधिकतर साहित्य इजराइल के

---

[15] Barbara Harlow, 'Resistance Literature', Introduction(page-16)
[16]Barbara Harlow, 'Resistance literature', introduction, page-16
[17] Barbara Harlow, 'Resistance literature', introduction, page-15

आधिपत्य के भीतर सिसकते फिलीस्तीन की व्यथा है जिसको नज़र –अंदाज किया जाता रहा है । कानाफ़ानी अपने साहित्य के माध्यम से पुनर्परीक्षण पर बल देते हैं जिसके अन्तर्गत शोधगत आलोचना की सैद्धान्तिकी और साहित्यिक मानदण्डों पर विचार किया गया है । कानाफ़ानी की तरह रेगिस डेब्रे नामक फ्रेंच समाज विज्ञानी ने प्रतिरोध शब्द को शक्ति और ऊर्जा देने का काम किया । डेब्रे, चे ग्वेरा के साथ क्यूबा और दक्षिणी अमेरिका की स्वतन्त्रता के लिए लड़े । स्वाभाविक था कि वे प्रतिरोधी साहित्य को समझ सकते थे । 1955 ई. में भारत द्वारा आयोजित 'बन्दंग सम्मेलन' से प्रेरित होकर डेब्रे ने 'ले मोन्डे डिप्लोमैटिक' नामक लेख लिखा और वैश्विक स्तर पर प्रतिरोध के साहित्य की चरणबद्ध मीमांसा की । एक तरह से कहा जा सकता है कि प्रतिरोध की परम्परा साहित्य में तीसरे विश्व के देशों के द्वारा आई, क्योंकि तीसरे विश्व के अधिकतर देशों में पूँजीवादी सत्ता शोषक की भूमिका निभा रही थी, जिससे मुक्ति पाने के अर्थ में प्रतिरोधी साहित्य की प्रादुर्भावना हुई । न्गूगी वा थियांग नामक कीनियाई साहित्यकार ने साहित्य की रसास्वादकता को शोषण और अत्याचार से जोड़कर देखा ।[18] अपने लेख 'लिटरेचर इन स्कूल्स' में न्गूगी ने साहित्य को नए सौन्दर्यशास्त्र के अन्दर देखा है । उनका मानना है कि वंचितों के साहित्य का मूल्यांकन परम्परागत तरीके से सम्भव नहीं है । अफ्रीका के लेखकों द्वारा जो उत्पीड़न का वृत्तान्त लिखा गया, उसे नाइजीरियन लेखक, आलोचक, नाटककार 'वोल सोयिन्का' ने बखूबी समझा है । अपनी किताब 'मिथ लिटरेचर एण्ड द अफ्रीकन वर्ल्ड' में सोयिन्का ने बताया है कि अफ्रीकन लेखकों ने विज़न के तहत साहित्य या अभिव्यक्ति की दूसरी विधाओं को देखा और परखा है ।[19] इस तरह वैश्विक स्तर पर बीसवीं शताब्दी में साहित्य एकमुश्त प्रतिरोधी रुख अपनाता दिखलाई पड़ता है । बीसवीं शताब्दी में ज़ोर पकड़ती प्रतिरोध की धारा का विकास इक्कीसवीं सदी में भी देखते ही बनता है । जैसे–जैसे पूँजीवादी शक्तियाँ फल–फूल रही हैं, वैसे–वैसे साहित्य में प्रतिरोध की आवाज़ तीव्रतर होती जा रही है ।

समकालीन विश्व साहित्य की बात करें तो उसकी खास प्रवृत्ति शोषण से मुक्ति है। पूरे विश्व पटल पर किसानों और गरीबों की जो दयनीय स्थिति है उसको समकालीन

---

[18] Barbara Harlow, 'Resistance Literature', page-08
[19] Barbara harlow, 'resistance Literature, page-10

साहित्य अपनी संवेदना का केन्द्रबिन्दु बनाता है । समकालीन साहित्य का जो प्रतिरोधी मिज़ाज है, उसे फिलीस्तीनी कवि महमूद दरवेश ने भली–भाँति समझा है। 1960 ई. में 19 वर्ष की आयु में उनका पहला कविता संग्रह 'बेपर परिन्दे' प्रकाशित हुआ, कालान्तर में 1961 ई. में उन्होंने 'इजराइली कम्यूनिस्ट पार्टी' की सदस्यता ले ली और पार्टी के अरबी अखबार 'अल इत्तहाद' का संपादन प्रारम्भ किया । इजराइल द्वारा अपने ही घरों से बेघर किए गए फिलीस्तीनियों की व्यथा को शब्दश: चित्रित करने का काम दरवेश ने किया है । दरवेश मानते हैं कि कविता एक विज़न देती है, शोषण से मुक्ति का रास्ता दिखाती है । दरवेश का मानना है कि " आदमी एक जगह जन्म लेता है, हालाँकि मरने के लिए उसके पास अलग–अलग जगहें हैं –निर्वासन, जेलखाने या अपनी मातृभूमि । जिसे अतिक्रमण और उत्पीड़न ने एक भयानक दु:स्वप्न में बदल डाला है । कविता शायद हमें सिखाती है कि हम अपने भीतर एक खूबसूरत स्वप्न को ज़िंदा रखें ताकि हम बार–बार अपने भीतर ही जन्म लेते रहें और एक बेहतर दुनिया बनाने के लिए शब्दों का इस्तेमाल करते रहें ।"[20] दरवेश की भाँति रूसी युवा कवि येव्तुशेंको का भी मानना है कि साहित्य के अलावा सत्ता के प्रतिरोध का दूसरा कारगर विकल्प नहीं है । 1956 ई. में निकिता क्रुश्चेव ने आन्तरिक विस्फोट की शुरुआत करते हुए स्तालिनवादी व्यवस्था का प्रतिकार किया था । स्तालिनवादियों ने क्रुश्चेव को नेतृत्व से हटाकर यथास्थितिवादी ब्रेजनेव को सत्ता सौंप दी जिसके प्रतिरोध में येव्तुशेंको ने 'चुप्पी' नामक कविता लिखी जिसमें उसकी तड़प देखते ही बनती है–

मैं तुमसे क्या कहूँ
ऐ रूस
मैं क्या चुप रह जाऊँ
ऐ रूस
बहुत ज्यादा सलीबें हैं
तेरे कब्रिस्तानों में
और ऐसी भी कब्रें हैं बहुत

[20] www.aksharparv.com/vichar.asp%

जिन पर नहीं सलीब

मैं कैसे मदद करूँ तेरी

ऐ रूस

वहाँ

कवि क्या मदद करेगा

जहाँ सत्ता

प्राय: कवियों को

देश निकाला दे देती है।[21]

सन् 1988 ई. में रूस के अनेक बुद्धिजीवियों, कलाकारों द्वारा 'कल्चर एण्ड पेरिस्ट्रौइका' नामक संकलन निकाला गया जिसमें साहित्य का प्रतिरोधी तेवर देखा जा सकता है । इस संग्रह से ली गई त्वारद्वास्की की पंक्तियाँ स्तालिनवादी दौर की घुटन और दमन के विरुद्ध दबी हुई भावनाओं को व्यक्त करती हैं–

जो सब कुछ रह गया था अनकहा

फ़र्ज कहता है कि हम आज वह सब कहें।[22]

रूस की ही भाँति चीन में भी जो समकालीन साहित्य रचा जा रहा है, उसमें प्रतिरोधी रुझान देखते ही बनता है । गावो झिंगजिआन नामक चीनी साहित्यकार का मानना है कि "सच्चे कलाकार को विचारधारा से ऊपर उठकर सत्ता, रीति–रिवाज, और वर्चस्व का प्रतिकार करना चाहिए ।"[23] इस तरह से देखा जा सकता है कि पूरे विश्व साहित्य में प्रतिरोध की संकल्पना सोलहवीं शताब्दी से स्फुरित होते हुए आज तक बदस्तूर जारी है । सभी तरह की दासता से, बंधन से मुक्ति के अर्थ में प्रयुक्त प्रतिरोध की चीत्कारें साहित्य में तीव्रतर रूप में मौजूद रही हैं ।

यदि भारत के संदर्भ में कहें तो आज से करीब २५०० वर्ष पूर्व जो 'थेरवादी साहित्य' रचा गया, उसे 'मुक्ति का साहित्य' कहा जा सकता है । यह उस दौर का साहित्य है जब हमारे देश में जातिवाद चरम पर था । स्त्री और शूद्र दोनों की दशा दयनीय थी । न तो उन्हें वेदपाठ का अधिकार था और न ही इतनी स्वतन्त्रता थी कि वे

---

[21] www.tadbhav.com/issue%2015/yado% 20se% 20 rachi% 20gaon.htm

[22] www.tadbhav.com/issue%2015/yado%20se%20rachi%20 gaon.htm

[23] www.hudsonreview.com/wio8iewisweB.pdf

पितृसत्ता के आगे अपने विचारों को व्यक्त कर सकें । ऐसे धर्मभीरु समाज में साहित्य ने अपने स्तर पर गंभीर लड़ाईयाँ लड़ीं, मनुष्य को मनुष्य न समझे जाने की प्रवृत्तिविशेष का साहित्य ने प्रतिकार किया । साहित्य का क्या दायित्व होता है यह 'सुमंगला माता' की कविता बताएगी जो पारिवारिक दंश और जकड़न के खिलाफ व्यक्तिगत स्तर पर एक स्त्री का प्रतिरोध है –

अंततः मुक्त हूँ मैं
पूरी गरिमा के साथ
सम्पूर्ण मुक्त
मुक्त
तीन क्षुद्र वस्तुओं से
ओखल
मूसल
और अपने विकृत ईश्वर से,
मुक्त हूँ मैं
पुनर्जन्म और मृत्यु से
और वह सब जो मुझे बाँधे रखता था,
दूर फेंक दिया गया है ।
मुक्त
एक पूर्ण मुक्तवादी! मैं कितनी मुक्त
कितने आश्चर्यजनक रूप से मुक्त
रसोई के खटराग से
भूख की छटपटाहट से मुक्त
ठनठनाते हुए बर्तनों से मुक्त
उस बेईमान आदमी से भी ।[24]

[24] http:// theenlightened world.org/art site/2009/02/08

जब–जब आम जनता के हित को चोट पँहुची है, जब–जब व्यापक हित बाधित हुआ है, साहित्य ने अपना प्रतिरोधी मिजाज प्रस्तुत किया है । साहित्य के केन्द्र में साधारण मनुष्य है, उसकी इच्छाएँ अभिलाषाएँ ही साहित्य का स्वत्व हैं । जब–जब उत्पीड़न और दमन का वृत्तांत लिखा जाएगा साहित्य का प्रतिरोधी रुख और साफ होता चला जाएगा । साहित्य की जड़ें भविष्य में होती हैं, क्योंकि अधिकांशत: साहित्य वर्तमान की विसंगतियों से असंतुष्ट होता है । उसके रचाव को अगर खोल कर देखा जाए तो उसमें भविष्य को देखने का अँखुआ होता है जो धीरे–धीरे विकास को प्राप्त होता है । जिस तरह प्रतिरोध समकालीन प्रश्नों से जूझने के क्रम में पैदा होता है, ठीक वैसे ही सच्चा साहित्य अपने समय के यक्ष प्रश्नों से टकराकर ही कालातीत बनता है । साहित्य में प्रतिरोध की परम्परा लम्बे समय से रही है । साहित्य ने सदैव ही जड़वादिता और सामन्तीय प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ मुखर की है । आगे भी समाज की भलाई के लिए, जनकल्याणार्थ साहित्य वर्चस्ववादी शक्तियों का सशक्त प्रतिरोध करता रहेगा, जिससे शोषण पर आधारित व्यवस्था को जड़ समेत मिटाया जा सके ।

(ग) समकालीन कविता में प्रतिरोध

आज के जटिलतम जीवन को समकालीन कविता ने पूरी शिद्दत के साथ उतारने का काम किया है । समकालीन कविता आज के संगुम्फित यथार्थ को पूरी ईमानदारी से दिखाती है । आज के कवि के विषय में नामवर सिंह ने सही कहा है कि "आज कवि को न तो अपने अंदर झाँक कर देखने में संकोच है, न बाहर का सामना करने में हिचक । अंदर न तो किसी असंदिग्ध विश्वदृष्टि का मजबूत खूँटा गाड़ने की जिद है और न बाहर व्यवस्था को एक विराट पहाड़ के रूप में आँकने की हवस । बाहर छोटी से छोटी घटना, स्थिति, वस्तु आदि पर नज़र है और कोशिश है उसे अर्थ देने की । इसी प्रकार बाहर की प्रतिक्रिया अंदर उठने वाली छोटी से छोटी लहर को भी पकड़कर उसे शब्दों में बाँध लेने का उत्साह है ।"[25] समकालीन कविता चारों तरफ पसरे जीवन को अपनी ज़द में लाती है । एक तरफ यह सामाजिक जड़ता और बौद्धिक तटस्थता पर व्यंग्य करती है तो दूसरी तरफ राजनीतिक हलकों में अन्धाधुंध जारी भ्रष्टाचार के प्रति भी प्रतिरोधी रुख अख्तियार करती है । आज के समय को समकालीन कवि अच्छी तरह जानता है, उसे मालूम है कि आज का समय पहले की तरह साधारण नहीं है, आज के कवि को कहीं अधिक जोखिम का सामना करना है । राजेश जोशी पाठक से पूछते हैं कि क्या आज के समय को धीमा जहर कह सकते हैं? राजेश जोशी का यह प्रश्न बहुत हद तक वर्तमान समय को दिखाता है जहाँ धीरे-धीरे विष घोलने का काम सत्ता और समाज अपनी-अपनी तरह से कर रहे हैं-

(सत्ताएँ इस ज़हर के बारे में बहुत अच्छी तरह जानती हैं
और इसका उपयोग करने में हुनर मंद होती हैं)
धीमे ज़हर की यह तासीर होती है
कि वह बहुत धीरे-धीरे खत्म करता है जीवन को
क्या इस तर्क के आधार पर
समय को एक धीमा ज़हर कहा जा सकता है ?[26]

---

[25] डा.नामवर सिंह, 'वाद-विवाद संवाद', पृष्ठ-११२
[26] डा.राजेश जोशी, 'दो पंक्तियों के बीच', पृष्ठ-२६

समय की मार जिस तरह शिक्षा, भाषा, संस्कृति पर पड़ रही है, समकालीन कविता इन सबकी टोह लेती है । एक दूसरे को दुलत्ती लगाकर पीछे करने की जो मंशा बदस्तूर जारी है, उसके बीच आज की कविता आम–आदमी के बीच खड़ी होती है । प्रौद्योगिकी के चरम पर खड़ा विश्व जिस तरह युद्ध के हथियार बना रहा है, विकास के नाम पर जिस तरह आमआदमी के सपनों से खेला जा रहा है, इन सबके बीच कविता आमआदमी का बचाव करती है । यही नहीं उसे जहाँ भी लगता है कि अब करुणा, भाई–चारे से काम नहीं चलने वाला; वहाँ वह प्रतिरोधी रुख अख्तियार करती हुई सत्ता के आगे प्रतिपक्ष की भूमिका निभाती है । समकालीन कवि को मालूम है कि आज सबसे अधिक खतरा बाजार से है । आज के पूँजीवादी समय में हर वस्तु बाजार की भेंट चढ़ती जा रही है । समकालीन कविता बाजार की क्रूर व्यवस्था के तले दबे आमआदमी की सिसकार को दिखाती है । 'समकालीन कविता का प्रश्न और कविता' नामक लेख में कवि राजेश जोशी ने सही कहा है कि–"समकालीन कविता नई प्रौद्योगिकी और बाजार की आक्रामक उद्दंडता के विरुद्ध प्रतिरोध का नया पाठ है ।"[27]

बात यदि समकालीन कवि लीलाधर मंडलोई की करें तो उनकी कविता 'पराजयों के बीच' कभी न हार मानने का जज़्बा उत्पन्न करती है । इस कविता में मंडलोई दिखाते हैं कि बाजार की उपभोगपरक संस्कृति हर जगह अपना जाल डाल रही है, उसके इस जाल को छिन्न–भिन्न करने की जिम्मेवारी आज के कवि पर है । मंडलोई का कवि मन नियतिगामी होकर सर्वस्व ईश्वर पर नहीं छोड़ना चाहता, बल्कि किसानों, मजदूरों, दलितों को इकट्ठा कर उनकी मुक्ति के लिए संघर्ष छेड़ना चाहता है –

बाजार जो कि पूँजी पे सवार
छाता जा रहा है दुनिया के कोने–कोटरों में
और बिल्कुल सामाजिक नहीं
उसकी दिशा को मोड़ना चाहते हैं हम
कि जहाँ जीवन की साझा उजास है ।[28]

---

[27] राजेश जोशी, आलोचना, 'सहस्राब्दी अंक तेईस', अक्टूबर–दिसम्बर २००५, पृष्ठ–३४
[28] लीलाधर मंडलोई, 'काल बांका तिरछा', पृष्ठ–६८

समकालीन कवि इंतजार करता है उस समय का जब प्रतिरोध किया जा सके, आमआदमी को खुश देखने की दरकार में वह मुक्तिगामी संघर्ष में खुद की हिस्सेदारी निभाना चाहता है । कुमार अंबुज की 'इंतजार' कविता शोषण मुक्त समाज का सपना देखती हुई कविता है, जहाँ कवि वर्तमान से खासा असंतुष्ट है, और वह चाहता है कि कल को सुनहरा बनाने के लिए आज को यूँ ही न गँवाया जाए बल्कि आज को जनमानस के संघर्षों से जोड़ा जाए जिससे कल को ख़ुशगवार बनाया जा सके–

एक चिट्ठी, एक चित्र, एक कविता
या आती हुई कोई परछाईं भी
हमें भर देती है उम्मीद से
लगता है यही हमारे इंतजार की पदचाप है
और तेज रफ्तार से दौड़ने लगता है खून
और खुशी से उछलने लगती हैं रक्त में शामिल
लाल कणिकाएँ ।[29]

कवि बलदेव वंशी का मानना है कि अपनी सुरक्षा को लेकर धारा में डूबती चींटियाँ भी आक्रोशित हो उठती हैं । चिड़ियाँ भी खुद की हिफाजत के लिए सचेत होती हैं । उन्हें जब लगता है कि अब प्रतिकार करना चाहिए, प्रतिरोध के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं ऐसे में वे एक पल के लिए भी पीछे नहीं हटतीं, खुद को झोंक देती हैं । संशय, हताशा, चिन्ता का भरम नहीं पाले रखतीं, लेकिन आज का मनुष्य प्रतिकार की वर्णमाला तक भूल चुका है। वह शोषित होने के लिए अभिशप्त है । उसकी आत्मा तक जम चुकी है । बलदेव वंशी मानते हैं कि शोषण, अन्याय का प्रतिकार करना चाहिए, खुद को उनके आगे लाचार नहीं साबित करना चाहिए–

पानी के सैलाब में
बेबस बहती चींटी तक

---

[29] कुमार अम्बुज, 'अनंतिम', पृष्ठ–२५–२६

फाड़ लेती है मुँह प्रतिशोध में
चिड़ियाँ तक
टूट पड़ती हैं बिलाव पर
क्रोध में । और बिलाव
भूखे कुत्तों पर.....
पर
आदमी में जम गई हैं, आज
सब प्रवृत्तियाँ । ख़ूनी सभ्यता के
प्रतिकार की ।
आत्मरक्षा की वर्णमाला के
अक्षर तक भूल गए हैं लोग !.....[30]

बलदेव वंशी का कवि मन जानता है कि मानवता की आँख का जल सूख चुका है, बिलखते कलपते लोगों ने अपनी जिन्दगी काट दी है । दुखों को झेलती पथराई आँखों का दर्द कविता में कैसे उतारा जाए यह एक बहुत बड़ा जोखिम है, लेकिन आज का कवि इस जोखिम से दामन नहीं बचाता बल्कि वह झंझावातों से लोहा लेने के लिए खुद को पूरी तरह तैयार पाता है–

आकाशबेधी चीत्कारों की सर्द ऋतु में
फट रही हैं धरती में दुर्वह दरारें.....
और कवि
बैठे हैं
गर्म चूल्हों के पास
फ़िलहाल । राख के मध्य
ढूँढते चिन्गारी!.....[31]

---

[30] बलदेव वंशी, 'धरती हाँफ रही है' ; पृष्ठ–७९–८०
[31] बलदेव वंशी, 'धरती हाँफ रही है' ; पृष्ठ–३२

देश की आजादी को साठ साल हो गए, इस लम्बी कालावधि में गर कुछ तीव्रतर हुआ है तो वह है शोषण । समकालीन कवि बड़ी तत्परता से शोषण के अंदाज की खबर लेता है । शोषक शक्तियों के आगे प्रश्न चिह्न खड़ा करता है । आजादी के साठ सालों में जहाँ वर्चस्वशील वर्ग ने तमाम छल–प्रपंच सीखे, लोकलुभावन नीतियों के जाल में जनता को फँसाने की तरकीबें ईजाद की, वहीं जन संघर्षों में भी गरमाहट आती रही । शोषक वर्ग के भीतर के खोखल को खोलकर जनता को सावधान करने वाली मुक्तिगामी ताकतें बड़ी तादात में आगे आती रहीं । न उन्हें सत्ता के दमन से डर था और न ही उनके हौंसले पश्त थे । इसी क्रम में देखना वाजिब होगा रमणिका गुप्ता के कृतित्व को । रमणिका आंदोलन करती हैं, मजदूरों, किसानों के अधिकारों को लेकर झारखण्ड में जन संघर्ष छेड़ती हैं । उनकी कविताओं में जनसंघर्षों की आहट सुनाई पड़ती है । साफ तौर पर उनका कवि हृदय प्रतिकार करता है– बर्बरता का, अमानुषता का । खुद की भूमिका को चिन्हित करती हुई वे कहती हैं–

मजदूरों की हिमायत में
शोषितों की हिफाजत में
संघर्ष में जुटी
वर्गहीन समाज बनाने को
वर्गहीन बनी
जोखिम झेलती मैं...
हमला करने पर तुली मैं। [32]

समकालीन कविता की प्रतिरोधी धार को तेज करने में नि:संदेह रमणिका की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । 'जंगल का संघर्ष' कविता नक्सलबाड़ी आंदोलन को लेकर है । इसमें रमणिका दिखाती हैं कि मजदूरों की एकजुटता को देखकर शासक वर्ग के दाँत खट्टे हो जाते हैं । उन्हें समझ ही नहीं आता कि दमन की कौन–सी विधि काम में लायी जाए जिससे संघर्ष टूट जाए मगर जनान्दोलन खत्म होने की बजाय दलालों की नुक्ताचीनी की आदत में बट्टे लगाता जाता है । इस कविता में रमणिका दिखाती हैं कि

TH-17851

[32] रमणिका गुप्ता, 'भला मैं कैसे मरती', पृष्ठ–१२

Nehru

एक तरफ सत्ता राइफलों में गोलियाँ भरने का काम करती है तो दूसरी ओर जंगल के आदिवासी तीर कमान लेकर बड़ी तादाद में निर्भीक हो सत्ता से लोहा लेने निकलते हैं–

शनिवार को पूरे जिले का रेला
'जेल–भरो अभियान' का अद्भुत था मेला
जोंडरा का 'दर्रा' खा–खा कर
अड़े रहे वनवासी
सरकार झुकी...ज़मीनें छूटीं
बुलन्द हुए मुकाबले
जंगल जुल्म के विरुद्ध,
दमन की रफ्तार मन्द
जुल्म के हथियारों की धार भोथी
दलालों की दलीलें थीं
जन–जन ने अपनी ताकत देखी
एकता की शक्ति परखी ! [33]

समकालीन कविता इतिहास की उपेक्षा नहीं करती बल्कि उससे सीख लेती है । समकालीन कविता का जो प्रतिरोधी मिज़ाज है उस पर कहीं न कहीं स्पष्ट या अस्पष्ट तौर पर सन 67 का प्रभाव है । कविता अपने शिल्प तक में ऋणी है; वह उन बहादुर किसानों को श्रद्धान्जलि देती हुई आगे बढ़ती है जिन्होंने अपना तिल–तिल जन संघर्षों के वास्ते होम कर दिया । समकालीन कविता राजनीतिक सीमान्तता पर व्यंग्य करती है, जहाँ हर वस्तु एक राजनीतिक रंग में रँगती हुई प्रतीत होती है । कविता राजनीति से अलग वस्तु की खुद की पहचान को लेकर चिन्तित है, वह राजनीति के पैरोकारों से प्रश्न करती है कि आखिर क्या वजह है कि भारतीय राजनीति का दामन सँकरा होता जा रहा है । आपराधिक तत्व तो बढ़ते जा रहे हैं लेकिन आमआदमी राजनीति से दूर, बहुत दूर होता जा रहा है–

---

[33] रमणिका गुप्ता, 'भला मैं कैसे मरती', पृष्ठ–२१

बहस करूँगा सस्ती तुकों के तरफ़दारों से
बहस करूँगा कौम के सरदारों से
गांधी नेहरू जिन्ना जैसे किरदारों से
कि भारतीय राजनीति और
हिन्दी ग़ज़ल का क़ाफ़िया इतना तंग क्यों है
रदीफ इस कदर लम्बी हो गयी
कि राजनीति एक ही मिसरे में बुढ़िया हो गयी[34]

समकालीन कविता की एक बड़ी खासियत यह है कि वह अपने समय के प्रश्नों को लेकर कोताही नहीं बरतती, बल्कि अपने समय की चुनौतियों का दम भर सामना करती है । लगभग अस्सी से समकालीन कविता की यात्रा शुरु होती है । सन नब्बे से ही दलितविमर्श, स्त्रीविमर्श जैसे आन्दोलन हिन्दी पट्टी में उठ खड़े हुए । कविता दलितों और स्त्रियों को लेकर चलाए जा रहे आन्दोलनों के प्रति प्रतिक्रियावादी रुख नहीं अख्तियार करती, बल्कि उनकी अस्मिता को लेकर, उनके होने को लेकर चलाए जा रहे आंदोलनों में खुद बड़ी भूमिका निभाती है । इसका सबसे बड़ा सबूत तो यही है कि समकालीन कविता की पीठिका तैयार करने में खुद स्त्री रचनाकारों और दलित लेखकों–लेखिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है । समकालीन कविता में स्त्री की अस्मिता को लेकर जागरूक रहने वाली कवयित्रियों में रमणिका, अनामिका, कात्यायनी, सुनीता जैन, निर्मला गर्ग सरीखी कवयित्रियाँ हैं जो पितृसत्ता के दामन को तार–तार करती हैं । अतएव समकालीन कविता में प्रमाणित है कि स्त्री का शोषण अब ज्यादा दिन नहीं चलने वाला । अनामिका की 'खंडिता' शीर्षक कविता में बाकायदा देखा जा सकता है कि किस तरह स्त्री को उपभोग की वस्तु समझने की मंशा जारी है, इसमें वे दैवीय प्रतीक लेती हैं और दिखाती हैं कि किस तरह लोगों की माँग पूरी करने वाली देवी दुर्गा तक चारदीवारी में बैठे–बैठे थक चुकी हैं । व्यवस्था उन्हें भी मजबूर करती है कि मूर्ति ही बनी रहें । अनामिका इस कविता के मार्फत उस व्यवस्था पर कटाक्ष करती हैं जिसमें कहने को

[34] डा.गोबिन्द प्रसाद, 'मैं नहीं था लिखते समय', पृष्ठ–४५

स्त्री के लिए तमाम तरह की स्वतंत्रताएँ हैं, जबकि सच्चाई यह है कि जीने तक की स्वतंत्रता नहीं है । इस कविता में कवयित्री खुद देवी दुर्गा से मुखातिब होती है–

अच्छा, सुनो देवि,
अब तुम ही मेरी प्रतीक्षा करो ।
सदियों से बन्द पड़ी हो मूर्तियों में
अकड़ गई होगी ये पीठ तुम्हारी
एक मुद्रा धारे–धारे ।
कहो तो ज़रा मूव मल दूँ !
किसने कहा था कि खेलो तुम
इतनी मगन होकर स्टैचू–स्टैचू?[35]

समकालीन कविता को ग़र समय कविता कहें तो अनुचित न होगा । पूरी कविता में जिस बात का खयाल रखा गया है वह यह है कि समय का अंश मात्र भी ओझल न होने पाए । कविता आज के समय की जटिलता को समझती है, कविता समय के घूर्णन के बीच से प्रतिबद्धता हासिल करती है । उल्लेखनीय है लीलाधर जगूड़ी की 'गुंडा समय' कविता जिसमें कवि आज के समय के भदेस पक्ष को चित्रित करने के साथ–साथ अपना प्रतिरोधी अंदाज भी कमोबेश रखता है–

सारी व्यवस्थाओं का भरोसा छीनकर
इस गुंडा समय में
न मैं मंदिर में रहना चाहता हूँ, न मस्जिद में
मैं एक रहने योग्य घर में रहते हुए
कहने योग्य बात कहना चाहता हूँ
कि मैं धार्मिक नहीं एक मार्मिक संबंध हूँ[36]

उपर्युक्त कविता के हवाले से जगूड़ी बताते हैं कि जिस तरह मंदिर, काबे दिनोंदिन आपराधिक गातिविधियों के गढ़ बनते जा रहे हैं, उनकी शरण लेकर जिस तरह नृशंसता

---

[35] अनामिका, 'दूब धान', पृष्ठ–५०

[36] लीलाधर जगूड़ी, 'अनुभव के आकाश में चांद', पृष्ठ–२५

पल–बढ़ रही है, ऐसे में ज्यादा सही होगा कि टूटते सम्बन्धों को जोड़ने की ताकीद की जाए; अलगाववादी शक्तियों से, उनके इसलाहियात से सावधान होते हुए आम जनमानस के पक्ष में खड़ा हुआ जाए, तभी आज के समय को कल एक अच्छी निगाह से देखा जाएगा, वरना आज का गुंडा समय अपनी बुरी आदतों से सुनहरे भारत की आने वाली फसल बर्बाद कर देगा ।

समकालीन कवि को मालूम है कि शहरों की भीड़ भरी जिन्दगी में लोगों को फुर्सत ही नहीं है कि वे अपने दरबे से बाहर निकलें, दूसरों के विषय में सोच सकें । उन्हें तो बस किसी भी कीमत पर आगे बढ़ना है, प्रमोशन पाना है । ग़र प्रतिभा की बदौलत मिले तो ठीक वरना जीहजूरी, चापलूसी करके वे अपनी स्थिति को मजबूत बना लेंगे किंतु खस्ताहाली तो गाँवों में है जहाँ एक तरफ जातिवादी रौब छाया हुआ है जो छूटता ही नहीं, दूसरी ओर निरक्षरता चरम पर है । साधारण आदमी नून –तेल का हिसाब भी नहीं लगा सकता । मँहगाई की मार इतनी सख्त है कि लोगों की पूरी जिन्दगी जहालतों के बीच ही गुजर जाती है । समकालीन कविता जहाँ एक ओर बाजार की मार को चिह्नित करती हुई उसके ख़िलाफ़ तीखी प्रतिक्रिया जाहिर करती है, वहीं शहरी भव्यता के बीच गुम हो रहे गाँवों की पहचान करती है । जहाँ एक ओर गाँवों में व्याप्त अंधेरे को देखकर पसीजती है, वहीं शहरीपने के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करती है । ज्ञानेन्द्रपति ग्रामीण संस्कृति के कवि हैं । उनकी कविता का आधे से अधिक कोना गँवई सुरक्षा को लेकर है । कवि 'अपना बघवा' कविता में दिखाता है कि मुखिया 'बघवा' की जाति को लेकर मलामत करता है । आर्थिक शोषण से लेकर मानसिक शोषण तक की यातनाएँ बघवा को दी जाती हैं और यह समझा जाता है कि वह चुपचाप ज़रखरीद गुलाम की तरह खटेगा, माँ–बहन की दी गई गालियों को सुनकर भी उफ तक नहीं करेगा । ज्ञानेन्द्रपति इस कविता में दिखाते हैं कि अब जातिवादी शोषण नहीं चलने वाला। अब बघवा जैसे नौजवान संकल्परत हैं जातिवादी 'एरिस्टोक्रेसी' का गला घोटने के लिए। अब लाठी के बल पर उनके उत्साह को डिगाया नहीं जा सकता–

मुखिया जी ने आदत के मुताबिक उसे हँकाया था
अरे सुन मादर–बकिया शब्द उनके मुँह में घुट कर रह

गये थे लोगों ने बघवा की पलटती काली पीठ देखी थी
और उस पर चमकती पसीने की धारियाँ मालिक सुन्न होने
के पहले भी उसके उठे पंजे के बनैले क्रोध को नहीं समझ
पाये थे न उसके खुले मसूढ़ों पर उपलायी खूँख्वार चमक को
ज़मीन पर गिरने के पहले बघवा के कंठ में फँसी
गुर्राहट भी केवल उन्होंने ही सुनी थी।[37]

इस कविता में ज्ञानेन्द्रपति ने दिखाया है कि चमार–चूहड़ा कहकर, गालियाँ बककर अब कोई भी व्यक्ति यह न समझ ले कि उसकी हुक्मरानी का कारगर जवाब नहीं दिया जाएगा। अब सामाजिक वर्जनाओं को दलित तबका समझने लगा है। पहले उसे गुमराह करना सरल था, क्योंकि उसके अन्दर इतनी जागृति न थी, लेकिन आज की स्थिति कुछ अलग है। आज वह अपनों के चेहरे भी पहचानता है और साथ ही अपनी मिट्टी पलीत करने में लगे बिचौलियों की कारस्तानियों को भी जानता– समझता है। ज्ञानेन्द्रपति के कवित्व पर श्रीराम त्रिपाठी की उक्ति सही बैठती है–"ज्ञानेन्द्रपति विद्रोही पीढ़ी के ही कवि हैं। उन्होंने निरन्तर अपना और अपनी कविता का विकास किया है। कारण यह है कि वे आत्मनिरीक्षण भी करते हैं। उनका संवेदनशील मन निम्नवर्ग और किसानों की जहालत और बदहाली से क्षुब्ध और दुखी तो होता ही है, साथ ही उनके कारणों की पड़ताल भी करता है। इसलिए उसका आक्रोश संयमित और संघनित होता है।"[38]

ज्ञानेन्द्रपति, मनमोहन, उदयप्रकाश, आलोकधन्वा आदि समकालीन जनवादी कवि हैं, जिनकी कविता बोलचाल के लहजे में तीखा व्यंग्य करती है। बिना लाग लपेट के ये कवि राजनीति की शोषक छवि को उघाड़ कर रख देते हैं। आलोकधन्वा कहते हैं कि अगर सत्ता द्वारा जानबूझकर महामारी, बाढ़, गरीबी उत्पन्न न की जाए तो बच्चे तक बहुत दिन तक जी सकते हैं, लेकिन सत्ता षड्यंत्र के तहत बच्चों से उनका जीवन और

---

[37] ज्ञानेन्द्रपति, 'भिनसार', पृष्ठ–७०

[38] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२००

चिड़ियों से उनका उड़ना तक छीन लेती है । कवि आक्रोशित लहजे में सीधे सत्ता से टकराता है, और कहता है कि–

बच्चों को मारने वाले आप लोग!
एक दिन पूरे संसार से बाहर निकाल दिए जाएँगे
बच्चों को मारने वाले शासकों!
सावधान !
एक दिन आपको बर्फ़ में फेंक दिया जायेगा
जहाँ आप लोग गलते हुए मरेंगे
और आपकी बंदूकें भी बर्फ़ में गल जायेंगी[39]

समकालीन कवि अपनी कविता के सहारे पूछता है कि मैं एक आमआदमी हूँ जो अपना हाड़ गलाकर अन्न उपजाता है जिससे सौ करोड़ जनता का पेट पलता है । बारिश, गर्मी, ठंड में खटता हूँ और अपनी मेहनत से गोदाम भरता हूँ । किसी को जिलाने–मारने का अधिकार तो मेरा होना चाहिए क्योंकि पिसता तो आखिर मैं ही हूँ । फिर क्या वजह है कि गोली वे चलाते हैं जो ठीक से हाथ–पैर तक नहीं चला सकते; किसी के भाग्य का फैसला वे करते हैं जिनको न्याय की समझ तक नहीं है–

जिस ज़मीन पर
मैं अभी बैठकर लिख रहा हूँ
जिस ज़मीन पर मैं चलता हूँ
जिस ज़मीन को मैं जोतता हूँ
जिस ज़मीन में बीज बोता हूँ और
जिस ज़मीन से अन्न निकालकर मैं
गोदामों तक ढोता हूँ
उस ज़मीन के लिए गोली दागने का अधिकार
मुझे है या उन दोग़ले ज़मींदारों को जो पूरे देश को

---

[39] आलोकधन्वा, 'दुनिया रोज़ बनती है', पृष्ठ–१४

सूदखोर का कुत्ता बना देना चाहते हैं[40]

समकालीन कवि को चिन्ता इस बात की है कि मुसीबत का पहाड़ जो आम जनता पर आए दिन टूट रहा है उसकी संख्या अनगिनत है लेकिन उनके दर्द का बयान प्रस्तुत करने वाली शक्तियाँ बहुत कम हैं । कवि फैक्ट्री में काम करने वाले, उद्योगों का कचरा साफ करने वाले कामगारों की दयनीय स्थिति को देखकर दुखी ही नहीं होता बल्कि उनका हक मार जाने वाले धन्ना सेठों के आगे प्रतिपक्ष की भूमिका निभाता है–

इतनी ज़्यादा मुश्किलें हैं जिनमें जीवित हैं लोग
करोड़ों लोग गरीबी के नर्क में हैं
करोड़ों बच्चे झुलस रहे हैं फैक्ट्रियों में
करोड़ों स्त्रियाँ जर्जर शोकमय शरीरों में मुसकरा रही हैं
अदृश्य सुखों की प्रतीक्षा में हाड़ तोड़ रहे हैं करोड़ों लोग
जो भी मुश्किलें हैं वे करोड़ों की गिनती में हैं
और नामुमकिन सा ही है उनका बयान[41]

आज जिस तरह अखबारों, धारावाहिकों, टीवी चैनलों के माध्यम से एक सोची–समझी अभिजातीयता परोसी जा रही है, जिस तरह से एक आम–आदमी को उसके गाँव, उसके देश से बिलगाया जा रहा है, यह कोई एक ही रात में 'क्रिएट' की जा रही घटना नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक लम्बा षड्यंत्र है जिसके तहत एक छलावा रचा जा रहा है । तहजीब के बरक्स एक थोथी भौड़ी सी संस्कृति रची जा रही है जिसे आज का संवेदनशील कवि हर वक़्त महसूस कर रहा है । उसका प्रयास यही होता है कि कविता में उन दोगले चरित्रों की शिनाख्त की जाए जो जनता के साथ होने का आश्वासन देकर जनता को साफ करने के दुश्चरित्र में सत्ता और रुढ़िवादी शक्तियों का साथ देती हैं । समकालीन कविता में असंख्य स्वर हैं, अनगिनत कवि एक साथ रच रहे हैं । ग्रहण लग रहे जीवन को बचाने का जिम्मा एक साथ कई कवियों का है । हर दस साल पर कवियों की एक नई खेप आ जाती है जो अग्रजों से पाई गई सीख के आधार

---

[40] आलोकधन्वा, 'दुनिया रोज़ बनती है', पृष्ठ–२९
[41] कुमार अम्बुज, 'अनन्तिम', पृष्ठ–१०

पर खोती हुई विरासत को पुरजोर बचाने का काम करती है । इस तरह समकालीन कविता आज के पूँजीवादी दौर में न केवल हकीकत की राजदार है बल्कि हकीकत की कालिमा से परे एक नए संसार को बसाने का प्रयास भी है, जहाँ शोषण नहीं, आतंक नहीं, प्यार हो– ऐसे समाज का पुनर्वास है आज की कविता । आज की कविता के प्रतिरोधी तेवर को जानते–समझते हुए ओम भारती ने 'कविता का खतरा' कविता में सही फरमाया है कि–

कठिन वक्त में
कठिन वक्त से
कठिन वक्त की
कठिन वक्त– सी
जुड़ती कविता
भिड़ती कविता
बनती और
बिगड़ती कविता[42]

इस तरह समकालीन कविता अपने समय, कालबोध से जूझती हुई कविता है, जिसमें जनमानस की पीड़ा है जिसमें एक शोषणमुक्त समाज का सपना है । समकालीन कविता के विषय में इतना ही कहना है कि–

जन–जन की पीड़ा में
जन–मन के सपनों में
आती जो जाती जो
गाती जो कविता है
भाती वो कविता है ।[43]

---

[42] ओम भारती, 'कविता की आँख', पृष्ठ–११४
[43] ओम भारती, 'कविता की आँख', पृष्ठ–१११

दूसरा अध्याय

अरुण कमल की काव्य दृष्टि

दूसरा अध्याय

अरुण कमल की काव्य दृष्टि

मेरे पाँव हिल रहे हैं
कंठ सूख रहा है–
मुझे तो देखना था बस आँख का गोला
और मैं इतना अधिक सब कुछ क्यों देख रहा हूँ देव!

कविता को लेकर प्रत्येक कवि की एक खास दृष्टि होती है जिसके तहत वह कविता को जानता और समझता है । अरुण कमल इससे इतर नहीं हैं । कविता को लेकर उनकी साफ और संयत दृष्टि है और इसी दृष्टि की सहायता से वे कविता को आमआदमी के पक्ष में खड़ा करते हैं । अरुण कमल कविता के लिए व्यापक कैनवस चुनते हैं । उनकी कविता हरेक चीज़ को अपनी आँख में सँजो लेती है, यथार्थ का एक टुकड़ा भी इधर–उधर नहीं होता । यथार्थ अपने पूरेपन के साथ अरुण कमल की कविता में दिखता है । आज जीवन पल–छिन बदल रहा है, जो चीज़ अभी ताज़ी है वह दूसरे ही पल बासी पड़ जाती है । आज का कवि इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है । आज के कवि को दिनों–दिन आ रहे बदलाव के चिह्नों की पड़ताल भी करनी है । इस विशेष अर्थ में अरुण कमल का कवि मन जानता है कि उसे अपनी कविता का भवन रोज़ नई बदलती दुनिया के समानान्तर खड़ा करना है, कविता को नए इलाके में पैर रखना है । तभी वह अपने समय और युगबोध से जुड़ पाएगी–

यहाँ रोज़ कुछ बन रहा है
रोज़ कुछ घट रहा है
यहाँ स्मृति का भरोसा नहीं
एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया

जैसे वसन्त का गया पतझड़ को लौटा हूँ ।[44]

अरुण कमल इस नई दुनिया को विस्मय से देखते हैं, साथ ही नएपन के साथ कविता को जाँचने–परखने की नई दृष्टि भी प्राप्त करते हैं ।

आज जहाँ बदलाव बदस्तूर जारी है, हर वस्तु को आँकने का प्रतिमान भी वही नहीं है जो आज से पहले था । इस अर्थ में कविता के प्रतिमानों में भी बदलाव आया है। आज कविता तुकों, छन्दों, अलंकारों से दूर जीवन को उसकी समग्रता में देखने को आतुर है । ऐसे में कविता के सामने बड़ी चुनौती है । कविता को यथार्थ से जोड़ना भी है और एक सीमा तक उसे यथार्थ से दूर भी रखना है । कोई भी कवि जीवन की मुश्किलों का समाधान अपनी कविता में ढूँढ़ता है । एक सीमा तक खुद को जीवन से जोड़ता है और एक सीमा के बाद खुद नया जीवन रचता है । रचाव की प्रक्रिया में कई बार उसे अनुभव का सहारा लेना पड़ता है और कई बार कवि खुद नया अनुभव सिरजता है । अब देखना यह है कि अरुण कमल का कवि मन कविता के लिए किन उपादानों का प्रयोग करता है, किस हद तक परम्परा से दाय ग्रहण करता है और कहाँ जाकर परम्परा से अलग अपनी नई पहचान बनाता है । एक सामान्य व्यक्ति की ही तरह कविता से उनका पहला परिचय स्कूली दिनों में होता है जब कविता उन्हें अपनी तरफ खींचती है, उस समय शायद उन्हें मालूम भी न था कि कविता से उनका जीवन्त रिश्ता बन जाएगा । दुनिया का कोई भी बड़ा कवि जब कलम पकड़ता है तो सबसे पहले वह अपने आस–पास के जीवन को अपनी स्थानीय भाषा में रूप / शक्ल देने का काम करता है । अरुण कमल ने भी अपनी भाषा में कविता की संवेदना को पकड़ा; और न केवल पकड़ा बल्कि कविता की भावयात्रा में वे पूरी तरह समाते चले गए । वे खुद मानते हैं कि मैंने पहले– पहल भोजपुरी में कुछ लिखा या कहा । पहला बड़ा कवि जिसे मैंने देखा वे भिखारी ठाकुर थे । बालमन की स्लेट बेहद साफ होती है जिस पर कुछ भी लिखा–मिटाया जा सकता है । अरुण कमल के बालमन पर भिखारी ठाकुर छाते चले गए । कविता से कवि की पहली आपसदारी बचपन के दिनों में होती है।

---

[44] अरुण कमल, 'नए इलाके ' में, पृष्ठ–13

इस तरह हम देख सकते हैं कि कविता की पहली झँकार उन्हें भिखारी ठाकुर से मिली और इसे लम्बी अनुगूँज में बदलने का काम किया निराला, शमशेर, त्रिलोचन की परम्परा ने । अरुण कमल मानते हैं कि अन्य कवियों की तरह उन्हें भी परम्परा से बहुत कुछ मिला । "मैं अपनी ही कविता की मार्फ़त कहूँ कि आप सारा कुछ दूसरों से लेते हैं और उस लोहे में बस एक धार देते हैं जो आपकी अपनी है, लेकिन जो उस दिए गए लोहे के बाहर नहीं है।"[45] अरुण कमल बड़ी ही विनम्रता के साथ अपने पूर्व कवियों का योगदान स्वीकारते हैं, जिस तरह कवि शमशेर को साधना पथ पर कवि निराला का साथ मिला, कमोबेश वैसे ही अरुण की साधना को टहकार करने में निराला, ग़ालिब, तुलसी दास जैसे कवियों का योग मिला, जिसे भुलाया नहीं जा सकता । कोई भी कवि आकाश से चीज़ों को नहीं ग्रहण करता उसे जो कुछ भी मिलता है अपनी परम्परा से । अरुण कमल को भी परम्परा ने भीतर तक भरने का काम किया । परम्परा ने ही कविता का संस्कार निर्मित किया और इसी संस्कार ने व्यापक दृष्टि दी जिससे कविता की समझ पुख़्ता हुई । अरुण कमल स्वयं मानते हैं कि " कालिदास और भवभूति के बिम्बों ने मुझे समकालीन कविता को नए ढंग से देखने पर विवश किया । तभी आलोकधन्वा जी ने निराला की कई पुस्तकें मुझे पढ़ने को दीं । फ़ैज़ भी दिया । और चाँद का मुँह टेढ़ा है मैंने खुद खरीदा । मुक्तिबोध ने मेरे नितान्त निजी संकटों में मुझे सँभाला । कविता की इस शक्ति का मुझे इसके पहले अंदाज न था । ये सारे कवि वो थे जो सम्पूर्ण जीवन के कवि थे । प्रेम, उद्दाम और आवेग से सम्पन्न गहरी करुणा के कवि । मैं अपने कवियों को पाने लगा था ।"[46]

किसी भी कवि की समझ कविता को लेकर क्या है? इसे तभी जाना और समझा जा सकता है जब इस बात की पड़ताल की जाए कि अमुक कवि ने किन कवियों को पढ़ा है । क्योंकि जब कोई कवि किसी खास तरह की कविता का पाठ करता है तो उससे न केवल वह भरता है बल्कि अनायास उसी पथ पर चलने भी लगता है, जिस पथ पर उसका प्रिय कवि चला है । इस तरह हम देख सकते हैं कि अरुण कमल को बनाने, सजाने, एवं गढ़ने में उनके पूर्व के कवियों का विशेष हाथ रहा । यहीं से वह

45–वही, पृष्ठ–११०

46–सम्पादक –किशन कालजयी, 'संवेद पत्रिका', अगस्त २००७, पृष्ठ–१०९

दृष्टि मिली जिसने उन्हें गरीबों के पक्ष में लिखने के लिए प्रेरित किया । अरुण कमल का कवि मन चाहता है कि वह जले तो हर–तरफ प्रकाश ही प्रकाश हो, काष्ठ खंड की तरह कवि पूरी तरह हविष्य हो जाना चाहता है । जल कर खाक हो जाने की इस प्रक्रिया में कवि की दृष्टि का बोध होता है चाहता था जलूँ तो

केवल रोशनी हो
धधाती लपट
धुआँ न कालिख न राख
जलने के बाद लगे कुछ था ही नहीं
थी बस कपूर की बटी
बस थोड़ा सा ताप गीले तट पर ।[47]

अरुण कमल मानते हैं कि " कवि के लिए सबसे ज़रुरी है दिन–ब–दिन तेज हो रहे भारतीय जनता के मुक्ति संघर्ष में हिस्सा लेना और कविता को उन लोगों तक पहुँचाना जिनका भाव वे व्यक्त कर रहे हैं । कवि अपनी आन्तरिक ऊर्जा को कविता में बदलता है । लेकिन यह ऊर्जा भी जन–जीवन के घात–प्रतिघात से ही आ पाती है ।"[48] अरुण कमल को लगता है कि कविता को उन तमाम लोगों तक पहुँचाना है जो कष्ट से कराह रहे हैं, जो हर जगह उत्पीड़ित हैं

केवल शब्दों का फाहा लिये
जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
जो सबसे कमजोर है
जो अपने कौर के लिए भी हाथ उठा नहीं सकता
जो न शासक बनना चाहता है न शासित ।[49]

अरुण कमल का कवि मन सत्ता द्वारा पोषित नहीं होना चाहता बल्कि वह कदम–कदम पर सत्ता के सामने प्रतिपक्ष की भूमिका निभाना चाहता है । अरुण की काव्य दृष्टि

---

[47] अरुण कमल, 'नए इलाके' में, पृष्ठ–28
48–अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–१९१
49 अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–२३

कविता पर विश्वास करना सिखाती है । जिस तरह घनानंद को उनकी कविता ने बनाया था और विश्वास में पगे वे कह सके थे कि–' लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरो कवित्त बनावत' ठीक वही स्थिति अरुण कमल के साथ भी है । अरुण कमल कविता पर से खुद का विश्वास कभी नहीं डिगाते, बल्कि कविता का हाथ थामे वे बढ़ते ही जाते हैं । वे मानते हैं कि " जब कवि को कविता की शक्ति और भूमिका के विषय में ही संदेह हो तो उसकी कविता कभी भी बहुत सार्थक नहीं हो सकती । इसके अलावा फिर पाठकों का भी कोई खयाल उसे नहीं रहता । शायद इसी कारण वे कवि कविता को पाठकों तक पहुँचाने के लिए कभी सचेष्ट नहीं रहे ।"[50] अरुण कमल का कवि हृदय कविता की संप्रेषणीयता को लेकर भी सचेत है, अरुण कमल कविता को निचले तबके तक पहुँचाना चाहते हैं और इसके लिए वे कविता की पक्षधरता की भी बात करते हैं । "अरुण कमल कविता की शक्ति और लक्ष्य से परिचित हैं । इसीलिए वे कवितारूपी साधन से अपने वर्ग–मित्रों को यथार्थ से परिचित कराने के साथ–साथ उसके विरुद्ध एक जुट होकर लड़ने को प्रेरित करते हैं । इस कार्य में उनकी कविताएँ सफल होती हैं ।"[51]

ख़ैर, यह तो रही कविता को लेकर अरुण कमल की आशा–आकांक्षा;अब ज़रा कविता की रचना प्रक्रिया को लेकर उनके मन्तव्य को भी जानना–समझना आवश्यक है। कविता की रचना प्रक्रिया के विषय में अरुण मानते हैं कि " कविता की रचनाप्रक्रिया– आदिमानव से लेकर अब तक जो कुछ विकास हुआ है उस सबका एक कवि मन पर जो असर पड़ता है आभ्यंतरीकरण करते हुए फिर से उसको एक बिम्ब में कुछ शब्दों में एक पूरे फार्म में प्रकट करने का संघर्ष है । वह सिर्फ आत्मसंघर्ष नहीं है, जो बाह्यसंघर्ष है उसी का प्रसार है आत्मसंघर्ष, उसी का एक्सटेंशन है आत्मसंघर्ष और अंतत: आत्मसंघर्ष और बाह्य संघर्ष ये दोनों मिल जाते हैं और तब जाकर एक श्रेष्ठ कृति की रचना, एक श्रेष्ठ रचना की रचना होती है ।"[52] कविता की रचना–प्रक्रिया कोई एकाएक घटित होने वाली चीज नहीं है कि कलम लेके बैठ गए और कविता मानसलोक से पके

---

[50] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–१९१

[51] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२२४

[52] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–१८२

हुए महुए की तरह चूने लगी । कविता को जब बाहर आना है तो वह आएगी ही, शुभ मुहूर्त का वह इन्तजार नहीं करेगी । बाकायदा मथते हुए, बेचैनी पैदा करते हुए कविता अपने कवितारूप को प्राप्त होगी ।

कविता की रचना प्रक्रिया के तीन चरण हैं जिनकी ओर मुक्तिबोध ने भी इशारा किया है । मुक्तिबोध ने कविता के रचाव पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि –" कलाकार के लिए तीन प्रकार के संघर्ष करना आवश्यक है: एक, सुन्दर कलाकृति की रचना के लिए अभिव्यक्ति का संघर्ष;दो, कलात्मक चेतना के अंगरूप संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार, जीवन जगत में भीगने, रमने, अपने को निज–बद्धता से अधिकाधिक दूर करने और अधिकाधिक मानवीय बनाने के लिए आत्मसंघर्ष;तीसरे वास्तविक जीवन के बुनियादी तथ्यों के कारण बनने वाली हलचलों का, जिन्दगी के अलग–अलग ढंग के तानों–बानों का तजुर्बा हासिल करने के लिए मानव–समस्याओं को (गहराई से, ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक रूप से) अनुभूत करके, मानवता के उद्धार–लक्ष्यों से एकाकार होकर, वास्तविक जीवन–अनुभवों की समृद्धि प्राप्त करने के हेतु, वह संघर्ष जिसे हम तत्व के लिए, तत्वप्राप्ति के लिए संघर्ष कह सकते हैं । सच्चे मनीषी कलाकार के जीवन में ये तीनों संघर्ष एक साथ स्वभाविक रूप से चलते रहते हैं । और इसीलिए कलाकार का जीवन पीड़ा से ग्रस्त जीवन होता है, केवल सृजन पीड़ा से नहीं, अन्य पीड़ाओं से भी ।"[53] निश्चित तौर पर कलाकार का जीवन संघर्ष का जीवन होता है । कलाकार जब कुछ रचता है तो मद्धिम ढंग से रचता है । कई बार तो वर्षों बीत जाते हैं और कलाकार सार्थक शब्द नहीं जुटा पाता, और कई बार एक बारगी ही वह इतना पा जाता है कि अपने पाए हुए पर खुद–ब–खुद रीझ सा जाता है । कविता के लिए कवि को बनावटी जीवन की शरण नहीं लेनी होती, कवि तो सीधे–सीधे जीवन का साक्षात्कार करता है । कवि बाजार के खरीदे हुए बासी फल को कविता में नहीं चित्रित करता बल्कि डाल पर पकते हुए फल को, उसकी ललाई को सुन्दरता के साथ चित्रित करता है –

पर आज पहली बार जब देखा है
डाल पर पकते हुए फल को

---

[53] गजानन माधव मुक्तिबोध, 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष', पृष्ठ–४९

तभी जाना है असली रंग–स्वाद–गंध
इस छोटे से फल के
धरती–आकाश तक फैले सम्बन्ध ।[54]

किसी भी कवि के लिए उसकी अनुभवसंवेदना ख़ास मायने रखती है, क्योंकि कवि अनुभव की बदौलत तनाव का समन्वय करता है । एक तरह से कहें तो अनुभव ही वह आँख है जिसके सहारे कवि अपने काव्य–लोक को फैलाता है । अरुण कमल का कवि मन अनुभव संवेदना से जी नहीं चुराता, उसे जहाँ सौन्दर्य दीखता है वहाँ वह गहरा पैठता जाता है । कोई भी कवि जब कविता लिखता है तो उसे केवल वर्तमान की चिन्ता नहीं होती, बल्कि वह वर्तमान को महत्व देने के साथ अतीत और भविष्य का भी बराबर खयाल रखता है । एकान्त श्रीवास्तव ने कविता की सूक्ष्मता के विषय में सही कहा है कि " कविता के औजार बहुत सूक्ष्म होते हैं–एक घड़ीसाज जिस घड़ी की मरम्मत करता है–वहाँ केवल एक समय दिखाई देता है जो वर्तमान है । लेकिन कविता की घड़ी का पेण्डुलम समय के तीन ध्रुवों पर एक साथ अपने घण्टे बजाता है । स्मृति और स्वप्न के बीच कविता वर्तमान होती है ।"[55] किसी भी सार्थक कविता के लिए आवश्यक है कि वह स्मृतिबिम्बों की मदद से अतीत, वर्तमान और भविष्य के कुलाबे मिलाए । अरुण कमल की कविता भाषिक तराश के अलावा कथ्य एवं शिल्प तक में सधी हुई है । कविता में अतीत का अतीतत्व तो है ही साथ ही वर्तमान की नकेल के साथ भविष्य की अभिलाषाएँ भी मौजूद हैं । अतीत की अनुभवसंवेदना जहाँ वर्तमान को देखने की दृष्टि देती है, वहीं भविष्य का सपना कवि को सुन्दर के समीप ले जाता है । अरुण कमल वर्तमान में रहते हुए भविष्य देखते हैं । एक ऐसा भविष्य जब मज़दूर तबका खुशी–खुशी जीवन जी सकेगा, जब आम–आदमी की दैनिक ज़रूरतें पूरी हो सकेंगी । जब कोई भी इन्सान भूखों नहीं मरेगा ।

अरुण कमल सच्चे अर्थों में जनकवि हैं, उनकी कविता के सरोकार जीवनधर्मी हैं; जीवन से काटकर उनकी कविता और उन कविताओं की भावसंहति को नहीं समझा

---

[54] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–११
[55] एकान्त श्रीवास्तव, 'कविता का आत्मपक्ष', पृष्ठ–१७

जा सकता । अरुण कमल की कविता के सही मायने तभी समझ में आएँगे जब उनकी कविता को जीवन से जोड़कर देखा जाएगा । जीवन की विविधता ही उनकी कविता का सार है । अरुण कमल की कविता में जहाँ पितृसत्ता से होड़ ले रही औरत दिखाई देती है, वहीं हाड़ गलाकर भव्य इमारतें खड़ी कर रहे मजदूर दीखते हैं । उनकी कविता में जहाँ एक ओर अपने बेटे से मार खाती हुई कुबड़ी बुढ़िया है वहीं दो वक्त की रोटी के जुगाड़ में कपड़े सिलकर अपनी गरीबी ढँकती दरजिन है जो कलपती रह जाती है लेकिन नए फैशन की जुगत में बैठी मालकिन उससे कपड़े सिलवाना भी उचित नहीं समझती । अरुण कमल की काव्य–संवेदना से गुज़रते हुए एक समय ऐसा भी लगता है कि उनकी कविता का कोई केन्द्रीय स्वर ही नहीं है, कारण है उनकी कविता की विविधता । उनकी कविता किसी ख़ास बिन्दु के ईर्द–गिर्द चक्कर नहीं लगाती, अपितु वह लम्बा–बिखरा जीवन चुनती है । शायद यही वजह है कि उनकी कविता का प्रमुख स्वर जल्दी हाथ नहीं आता । वह फिसलता सा जान पड़ता है लेकिन जैसे ही कविता की सूक्ष्म परतें उघाड़ कर देखी जातीं हैं;कविता के भीतर और भीतर प्रवेश संभव होता जाता है, उनकी कविता का खास तेवर समझ आता जान पड़ता है । चूँकि अरुण कमल जीवन के हर छोर को पकड़ना चाहते हैं, अपनी कविता में महीन से महीन जीवनानुभवों को स्थान देना चाहते हैं, इसलिए उनकी कविता का कैनन इतना आसान नहीं कि उस पर अमुक या अमुक विचारणा की फतवेदारी दी जा सके । उनकी रचना की अँगुली पकड़कर जब हम बढ़ते हैं तो वह हमें उन जगहों तक ले जाती है जहाँ जाना चेतन रूप से सभ्य लोगों को स्वीकार नहीं ।

अरुण कमल की कविता के केन्द्र में वह मनुष्य है जिसकी आकांक्षा की सत्ता कभी कद्र नहीं करती, जिसकी भावनाओं की व्यवस्था कभी थाह नहीं लेती । जिसका कोई नहीं उसका सहारा है अरुण कमल की कविता । जो लोग कविता के लिए गहन विचार का होना ज़रूरी मानते हैं उनको अरुण कमल की कविता में भावुकता नज़र आएगी । लेकिन एक बात जिसकी ओर इशारा करना चाहता हूँ, वह यह कि अगर किसी की गरीबी देख कर पसीज उठना नास्टैल्जिक होना है तो अरुण कमल की कविता कहीं अधिक नास्टैल्जिक है । अरुण कमल की कविता तथाकथित उन बुद्धिजीवियों के आगे

प्रश्नचिह्न भी खड़ा करती है जो यह मानते हैं कि कविता को जनवादी होना तो चाहिए पर जनवादिता दिखनी नहीं चाहिए, जो कविता में भावों की थिगली तो लगाना चाहते हैं लेकिन गहरे बौद्धिक बनकर ; जिन्हें यह डर सताता रहता है कि कोई हमें भावुक न कह दे । आज के इस गहरे बुद्धिवादी क्षण में अरुण कमल की कविता नफ़ासत पसंद लोगों के वर्ग चरित्र को खोलने का भी काम करती है । बतौर उदाहरण अन्त शीर्षक कविता को देखा जा सकता है, जहाँ कवि छद्मजीवियों की पक्षधरता पर सवाल खड़ा करता है–

आखिर इसी जान
इसी देह की खातिर
नाक पर डाले रूमाल गरीब बहन के आँगन से गुजरा
और बलवंत के आगे टाँगे रहा भरा पीकदान
दस बजे दिन में या पाँच बजे शाम
जब सबसे तेज थी सड़क तब नहीं
तब जब सड़क थी सबसे सुनसान रात में एक के बाद
मैं मरा दब कर मलबा ढोने वाले ट्रैक्टर के नीचे ।[56]

इस कविता की सहायता से अरुण कमल तथाकथित बुद्धिजीविता की बखिया उधेड़ते हैं, बताते हैं कि छद्मजीविता का खात्मा कितनी आसानी से होता है । यह कविता जहाँ एक ओर जनविरोधी चरित्रों का पुरजोर विरोध करती है वहीं कवि की जन सामान्य से तदाकारिता स्थापित करती है । अरुण कमल जानते हैं कि कविता की रचना–प्रक्रिया आसान नहीं है, उसके लिए अन्दर– बाहर दोनों ही जगह संघर्ष करना है । परिवेशगत जटिलता कैसे रुपायित हो, इसकी चिन्ता कवि को आद्यंत रहती है–

कैसे सिल पर घिसूँ जायफल
तेल ठोप भर, ज्यादा गाद ।[57]

---

[56] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–२६
[57] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–१६

कविता लिखते वक्त रचनाकार संघर्ष करता है । उसे केवल कविता के फ़ार्म को लेकर ही चिन्ता नहीं होती, बल्कि पाठक का भी उसे बराबर खयाल रहता है । कविता को लेकर एक रचनाकार की जो जद्दोजहद होती है उस पर भी अरुण कमल बातचीत करते हैं। उनकी दृष्टि से पाठक कभी ओझल नहीं होता, साथ ही पूरे रचनाकर्म में वे इस बात का खयाल शुरू से आखिर तक रखते हैं कि कविता आखिर किसके लिए लिखी जा रही है । अरुण कमल का पाठक खेत मजूर है, उनका पाठक भारत की अपढ़ जनता है जो राजनीतिज्ञों द्वारा हर सिम्त ठगी जाती है । यही वजह है कि कविता को बहुत आलंकारिक, रेटोरिक बनाने से वे बचते हैं, कविता की सहजता का उन्हें हमेशा खयाल होता है, उनकी कोशिश होती है कि कविता हर आदमी तक पहुँचे । कविता के विशेषत्व का परिहार करते हुए आमआदमी की भाषा में आमआदमी तक कविता को पहुँचाने के लिए वे देशज शब्दों तक की मदद लेते हैं । उनके ज़ेहन में आम पाठक है। अकादमिक जगत एवं गहन विमर्शों में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेने वाला बुद्धिजीवी वर्ग उनकी कविता का हिस्सा नहीं है । जीवधारा कविता के मार्फ़त देखा जा सकता है कि अरुण कमल की काव्य–दृष्टि लोकजीवन के कितने करीब है–

कभी–कभी बथान में गौएँ करवट बदलती हैं
बैल जोर से छोड़ते हैं साँस
अचानक दीवार पर मलकी टार्च की रोशनी
कोई निकला है शायद खेत घूमने
धरती बहुत सन्तुष्ट, बहुत निश्चिन्त है आज
दूध भरे थन की तरह भारी और गर्म ।[58]

अरुण कमल की काव्य–भाषा में जनोन्मुखता के तत्व आभासित होते हैं । उनकी काव्यभाषा सामान्यीकृत शब्दावली ज़रूर लेती है, लेकिन वह इस अर्थ में सामान्यीकृत नहीं है कि वह यथार्थ को जस– का– तस कविता में उतार दे । उनकी काव्यभाषा में उसकी खुद की विशिष्टता भी है जो उसे अख़बारी नहीं होने देती । विश्वनाथ तिवारी ने कविता की भाषा के लिए जो बात कही है वह अरुण कमल की कविता पर खरी उतरती

[58] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–१२

है । उनका मानना है कि " कविता की भाषा सामान्य भाषा की तरह मात्र संप्रेषण का माध्यम नहीं होती, बल्कि वह उससे ज़्यादा होती है । अख़बार की भाषा, जो संप्रेषण का माध्यम है, रोज़ पुरानी पड़ जाती है, लेकिन कविता की भाषा रोज़ पुरानी नहीं पड़ती । सामान्य भाषा काव्यार्थ-प्रधान होती है, जबकि काव्य भाषा लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ प्रधान। इसीलिए काव्य-भाषा में अनेकार्थता होती है । कविता में शब्दों को भीड़ से अलग करके विशिष्ट बनाके रखा जाता है ।"[59] अरुण कमल की काव्य-दृष्टि कविता को सूचनात्मक ढंग से नहीं रखती । इस मायने में उनकी काव्य-भाषा विज्ञान की भाषा से भिन्न है और न केवल भिन्न है, अपितु अपनी रंगत, अपने शिल्प विधान में भी जुदा है । अरुण कमल कविता रचते वक्त रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में प्रयुक्त शब्दों से परहेज नहीं करते । उन्हें जहाँ भी जो शब्द काम का लगता है वे उसे कविता में ढाल देते हैं । यह ज़रूरी नहीं है कि वह शब्द हिन्दी का ही हो, मसलन ईर्ष्या कविता को देखा जा सकता है-

कल न्यूट्रान बम गिरेगा
हम तुम सब मर जाएँगे
सब कुछ नष्ट हो जाएगा
फिर भी इस टेबुल पर इसी तरह चमकता रहेगा
शान से यह ऐश ट्रे ।[60]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हम देख सकते हैं कि अरुण कमल न्यूट्रान, टेबुल, ऐश ट्रे जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं । इसका मतलब सिर्फ और सिर्फ यही है कि कवि को अपनी बात पाठक के समीप ले जानी है वह जितनी सहजता से अपनी बात उस तक पहुँचा देगा, उसी से उसके काव्यविवेक की थाह लगाई जा सकती है । अंग्रेजी के बहुत से शब्द हमारी भाव संवेदना में खप से गए हैं, ऐसे में उनकी जगह क्लिष्ट हिन्दी के शब्द रखने से बेहतर यही होगा कि हम उन शब्दों को कविता में स्थान दें जिनसे पाठक बाकायदा जुड़ा हुआ है । कोई ज़रूरी नहीं की वे शब्द क्लिष्ट हिन्दी के ही हों । अरुण कमल की काव्य-दृष्टि पर विचार करते हुए हम

---

[59] विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'कविता क्या है' ; पृष्ठ-५५
[60] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ-५२

पाएँगे कि वे पाठक के पर्सेप्शन का सदैव ध्यान रखते हैं । जहाँ उन्हें अंग्रेजी का शब्द रुचता है वहाँ वह उसे कविता में ढाल देते हैं और जहाँ उन्हें लगता है कि ठेठ ग्रामीण शब्दों की दरकार है वहाँ वे गँवई शब्दों को रखकर कविता की भावसंवेदना की रक्षा करते हैं । अरुण कमल कविता को दुर्बोध बना कर पेश नहीं करते, उनके लिए कविता की सहजता ज़रूरी है, क्योंकि सहज कविता ही सहज लोगों तक पहुँच सकती है । कविता की क्लिष्टता चंद लोगों की समझ के दायरे तक ही रह जाती है, यही नहीं क्लिष्ट कविता में वाक्चातुर्य ही नज़र आता है, कविता का कवितापन तो नदारद ही रहता है । अरुण कमल कविता को शाही महलसरों से दूर गरीब–गुरबा तबके तक ले जाते हैं। वे खुद से पूछते हैं कि मेरी कविता किसके पक्ष में खड़ी है? क्या वह पूँजीवादी लोगों के पक्ष में खड़ी है या उसका दायरा इससे आगे ठहरता है । अपनी कविता का धड़ा वे खूनी ज़मीन में नहीं गाड़ते, कविता को गहन मानवीय बनाकर ही उन्हें आराम मिलता है। अरुण कमल कहते हैं कि "कविता निर्बलतम का पक्ष है । जिसका कोई नहीं उसकी कविता है । जो सबसे कमजोर, दलित और असहाय है उसका बल है । मुए बैल की खाल से बनी भाँथी की धोंकती साँस है जिससे लौह भी भस्म हो जाए । इसके सिवा कविता की दूसरी भूमिका नहीं हो सकती । ऐसे समय में जब पूँजी का कोई वास्तविक विपक्ष बचे ही नहीं, कविता जीवन का अंतिम मोर्चा, अंतिम चौकी है ।"[61] कवि को अपनी कविता पर पूरा विश्वास है । वह जानता है कि उसकी कविता पैसे के आगे दुमछल्ले की भूमिका नहीं अदा करेगी । उसकी कविता दलितों, स्त्रियों, बूढ़ों की पीड़ा को अनुभूत करके उनके मुक्तिसंघर्ष में बराबर हिस्सेदारी निभाएगी । अरुण कमल की कविता दलितों की दुर्दशा देखकर पसीज उठती है ; वह उनकी हौसलाआफजाई करती है; आगे बढ़कर उनका हाथ थामती है; न चल पाने की स्थिति में खुद के पैर देकर कर्मपथ पर दौड़ने का माद्दा पैदा करती है

एक ही तो हैं हमारे लक्ष्य
एक ही तो है हमारी मुक्ति
साथ–साथ मिलकर चलेंगे हम

---

[61] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ –२३२

जहाँ गिरोगे तुम
वहीं रहेंगे हम
जहाँ झुकोगे तुम
वहीं उठेंगे हम
लाओ, मुझे दो अपने हाथ
चलो, मेरे पाँवों से चलो ।[62]

आज वोट की कलुषित राजनीति हर ज़गह घर कर रही है, कौड़ियों में स्वाभिमान बेचा जा रहा है । आमआदमी ढोर में तब्दील हो रहा है । ऐसे में अरुण कमल की कविता चुप नहीं बैठती । वह भली–भाँति जानती है कि आज के दमनकारी समय में उसकी किस तरह की भूमिका हो सकती है । वह बेलौस होकर कहती है–

जहाँ कहीं दुख में है आदमी
जहाँ कहीं मुक्ति के लिए लड़ता है आदमी
वहाँ कुछ भी नहीं है निजी
कुछ भी नहीं है गुप्त ।[63]

अरुण कमल को कविता से जो अपेक्षा है उसे पूरी ईमानदारी से वे अपने रचनाकर्म में उतारने का प्रयास करते हैं । इस संकटकालीन समय में जहाँ एक ओर वे कविता की भूमिका को लेकर चिन्तित दिखाई पड़ते हैं, वहीं उन्हें कविता की आलोचना को लेकर भी चिन्ता सताती है; क्योंकि कवि तो पूरी रचनात्मकता के साथ अन्दर–बाहर के तनाव को कविता में खोल कर रख देता है, बावजूद इसके कई बार आलोचक कविता की सही व्याख्या नहीं कर पाते । अरुण कमल मानते हैं कि " किसी भी आलोचक को पूर्वग्रह से ग्रस्त होकर किसी कृति का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, बल्कि पर्याप्त सोच–विचार कर ही किसी कृति के बारे में निर्णय देना चाहिए । साहित्य अथवा कला में जीवनदृष्टियों का संघर्ष ठीक उसी तरह नहीं होता जैसे हमारे सामाजिक–राजनीतिक जीवन में । एक कलाकृति की रचना अत्यंत जटिल होती है । कभी–कभी रचनाकार की घोषित राजनीतिक दृष्टि उसके जीवन–अनुभवों तथा प्रयुक्त

---

[62] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–५१
[63] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६१

बिम्बों के मेल में नहीं होती । कभी–कभी रचनाकार की जीवनदृष्टि रचना के पूरे प्रवाह को एक विशेष दिशा की ओर ले जाना चाहती है तो जीवन–प्रसंगों द्वारा नि:सृत प्रभाव बिल्कुल दूसरी दिशा की ओर । कभी कभी कई जीवनदृष्टियाँ भी एक साथ गुम्फित रह सकती हैं । इसलिए एक समालोचक को कृति का मूल्यांकन करते हुए अपने पूर्वानुमान या पूर्वाग्रह पर आश्रित नहीं होना चाहिए ।"[64]

अरुण कमल आलोचना से न्यायप्रियता की माँग करते हैं । वे चाहते हैं कि जिस तरह कवि जटिलताओं से टकराता है, रुढ़िवादी ताकतों से मुठभेड़ करता है, ठीक वैसे ही आलोचक को भी संघर्षधर्मी होना चाहिए ; यह नहीं कि कवि पीड़ा को पूरी तत्परता के साथ झेले और आलोचक कृति की चलताऊ व्याख्या कर उसे चलता कर दे । आलोचना को लेकर अरुण कमल की चिन्ता विचारणीय है । आज आलोचना की स्थिति वैसी नहीं है जैसे पहले थी, आज का आलोचक अपने दायित्व से मुकर सा गया है । इधर विगत दो दशकों से आलोचना में हास देखने को मिल रहा है । सृजन धर्मी कवि लगातार शिद्दत से भीतर की अकुलाहट को व्यक्त कर रहा है, अपने को माँज रहा है; अपनी कमियों को खुद स्वीकार भी रहा है, लेकिन आलोचना अपने दायित्व से भटक रही है । समकालीन आलोचना पर टिप्पणी करते हुए मंगलेश डबराल भी कहते हैं " मुझे लगता है कि हमारे वरिष्ठ आलोचकों का मौन सोचा–समझा हुआ मौन है । एक ऐसी सायास कोशिश है कि हमारे गोल या गुट में जो नहीं है या जो किसी भी साहित्यिक सत्ता–प्रतिष्ठान में शामिल नहीं है, उसके बारे में हम कुछ नहीं बताएँगे ।"[65] मंगलेश का यह कथन आलोचना के भटकाव को लेकर ही है । आज आलोचक पहले से कहीं अधिक राजनीतिक हुआ है । कृति की आलोचना करते वक्त वह या तो पूर्वाग्रह से युक्त होकर कृति की समीक्षा करता है या एक बनी बनाई चलनी से हर रचना की खतौनी कर डालता है । अरुण कमल कविता पर तो बात करते ही हैं, साथ ही आलोचना को लेकर अपनी दुश्चिन्ता भी व्यक्त करते हैं । आलोचना को लेकर उनकी चिन्ता यह बताती है कि कवि किस तरह अपने रचनाकर्म को लेकर सचेत है । उसे रचने की जिम्मेदारी भी निभानी है, साथ ही अपनी रचना को कूड़े के ढेर से अलग उसकी

---

[64] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–१८६–१८७

[65] मंगलेश डबराल 'आलोचना के सौ बरस', पृष्ठ–२३४, भाग–तीन

पहचान दिलाने के लिए संघर्ष भी करना है । रचना का मूल्य आँकते हुए आलोचक कहीं भटक न जाए, अरुण कमल इससे भी बापस्ता सावधान करते हैं । उनका मानना है कि प्रत्येक कृति अपना नपना ख़ुद लेकर आती है, इसलिए किसी भी कृति का मूल्यांकन उसी नपने से नहीं हो सकता जो आलोचक हर बार प्रयोग में लाता है इस तरह आलोचक को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, तब कहीं जाकर कृति विशेष की सही समीक्षा हो पाती है । अरुण कमल की काव्य दृष्टि पर बात करते हुए एक बात जो ख़ास मायने रखती है, वह यह कि अरुण कमल कविता को वामपंथी नज़रिए से देखते हैं, मार्क्सवाद ही वह आईना है जिससे होकर वे कविता की सही रेख के विषय में जानकारी हासिल करते हैं । अरुण कमल की कविता मार्क्सवाद से किस रूप में और कितना प्रभावित है, इसे जानने के लिए यह जानना भी बेहद आवश्यक है कि मार्क्सवाद है क्या और मार्क्सवाद से अरुण कमल कितना कुछ ग्रहण करते हैं । मार्क्सवाद की वैचारिकी वर्गहीन समाज की अवधारणा पर आधारित है । मार्क्सवाद किसी भी समाज के आधाररूप के तौर पर उत्पादन की भूमिका को स्वीकारता है । उसका मानना है कि उत्पादन ही आर्थिक विषमता पैदा करता है । उत्पादन के अतिरिक्तमूल्य पर एक तबका बिना मेहनत मजूरी के एकाधिकार कर लेता है, और उत्पादन के वास्ते अपना श्रम झोंक देने वाला तबका उत्पादन के मूल्य से वंचित कर दिया जाता है । बिना मेहनत– मजूरी के रातोंरात एक वर्ग शासक बन जाता है और अपने श्रम के एवज में छटाँकभर उत्पादित वस्तु पाकर एक तबका हमेशा भूख से लड़ता रहता है । अतिरिक्तमूल्य को हड़प जाने वाला बुर्जुआ वर्ग नियम बनाता है, व्यवस्था रचता है और इस व्यवस्था की आड़ लेकर आमजन का शोषण करता है । यही नहीं, यह बुर्जुआ तबका कला के सौन्दर्यगतमूल्यों का प्रयोग भी अपने हित में करता है । बकौल मैनेजर पाण्डेय–" बुर्जुआ सौन्दर्यशास्त्र जनवादी कला और साहित्य की मूल्यवान विरासत से जनता को वंचित करने का षडयंत्र करता है । जनवादी सौन्दर्यशास्त्र को बुर्जुआ सौन्दर्य–चिन्तन के इस षडयंत्र से जनता को बचाना है।"[66] यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि जनवादी सौन्दर्यशास्त्र ही मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र है । मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र जनता के संघर्ष में हिस्सा लेता है, बुर्जुआ

[66] मैनेजर पाण्डेय, 'शब्द और कर्म', पृष्ठ–५५

वर्ग की अधिनायकवादी वैयक्तिक व्यवस्था को मिटाकर सर्वहारा की सामूहिक व्यवस्था को प्रश्रय देता है । मार्क्सवाद सर्वहारा के संघर्ष में बढ़ चढ़कर हिस्सा लेने को ही अपना ध्येय समझता है । मार्क्सवाद युद्ध को कभी जायज़ नहीं ठहराता क्योंकि इससे मानवता नि:संतान होती है, लेकिन जब उसे लगता है कि बिना युद्ध के सर्वहारा को उसका अधिकार नहीं मिलने वाला तब मार्क्सवाद युद्ध को अवश्यंभावी मानकर जनता के मुक्तिसंघर्ष में हिस्सा लेता है । एमिल बर्न्स ने सही कहा है कि "मार्क्सवाद उन साम्राज्यवादी युद्धों की निन्दा करता है जो स्वतन्त्रता के लिए जूझने वाली जातियों को कुचलने के लिए लड़े जाते हैं । ऐसे युद्धों को मार्क्सवाद अन्याय के युद्ध मानता है । परन्तु जब जातियाँ, साम्राज्यवादी आक्रान्ताओं का प्रतिरोध करने के लिए या साम्राज्यवादी शासन से मुक्त होने के लिए युद्ध करती हैं, अथवा जब जनता शोषण का अन्त करने के लिए गृह–युद्ध छेड़ती है, तो मार्क्सवाद इन युद्धों को न्यायोचित मानता है। कारण कि शोषकों पर जनता की विजय के द्वारा ही उन परिस्थितियों का अन्त किया जा सकता है, जिनसे युद्ध उत्पन्न होते हैं ।"[67] मार्क्सवाद की अवधारणा वर्गहीन समाज की अवधारणा है । जहाँ कोई वर्ग न हो, कोई शोषक सत्ता न हो, ऐसे समाज का सपना मार्क्सवाद दिखाता है । इस अर्थ में अरुण कमल मार्क्सवाद से प्रभावित साहित्यकार हैं क्योंकि उनका सपना भी आम–जन के हित का है । अरुण जहाँ भी आदमी को पिसते हुए, घुटते हुए, लड़ते हुए देखते हैं, वहाँ खुद को उस लड़ाई में शरीक करते हैं । अरुण कमल अपनी रचनात्मकता को इसी साधारण व्यक्ति की भलाई में लगाते हैं । अरुण कमल को विश्वास है कि जो मजदूर वर्ग भव्य इमारतें बनाता है, उसी के जिम्मे मानवता की सुरक्षा का भार है –

जो नया जीवन रच रहे हैं
जो उठा रहे हैं नई भित्तियाँ
उनके ही जिम्मे है खंडहरों को बचाने का भार
ये खंडहर मनुष्यता के चरण चिन्ह
कटे बाँस की ठूँठ जड़ें

---

[67] एमिल बर्न्स, 'मार्क्सवाद क्या है', पृष्ठ–३३

उगी है जिनसे आज की
सबसे नई कोंपल ।[68]

"मार्क्सवाद कला का उपयोग भी सर्वहारा के पक्ष में करता है । मार्क्सवाद कला से अपेक्षा रखता है कि वह पूँजी के छद्मजाल को खोलकर रख दे ताकि उस पूँजी का नियोजन जनता की भलाई में हो सके । मार्क्सवाद कला कला के लिए सिद्धान्त का विरोधी है और कला जीवन के लिए के सिद्धान्त को महत्व देता है ।"[69]

मार्क्सवाद से अरुण कमल जीवनधर्मिता सीखते हैं । कला किसके लिए हो इसकी व्यवस्थित समझ उन्हें मार्क्सवाद से मिलती है; लेकिन विचार की लीक पीटने की बजाय अपनी समझ के अनुसार वे मार्क्सवाद को अपनाते हैं । अरुण कमल तथाकथित उन मार्क्सवादियों की तरह नहीं हैं जो पार्टी लाइन से ऊपर नहीं उठ पाते, बल्कि जहाँ भी, जिस तरह भी उन्हें सर्वहारा के दुख का शमन करना होता है अपनी समझ के अनुसार कारगर उपाय खोजते हैं । कुल मिलाकर कहना इतना ही है कि हर जगह मार्क्सवाद की पोथी पलटने की बजाय अरुण कमल अपने कामनसेंस से कविता को आम-आदमी के बीच खड़ा करते हैं । श्रीराम त्रिपाठी ने सही कहा है -"अरुण कमल की दृष्टि को मार्क्सवादी दर्शन तीव्र करता और दिशा देता है । इसलिए वे यथार्थ की जटिलता को उसकी जीवंतता में पकड़ लेते हैं ।"[70] यह बात सही है कि अरुण कमल की कविता को मार्क्सवादी दर्शन दिशा देता है, पर साथ ही यह भी देखने लायक है कि कविता को वे पोस्टर की शक्ल नहीं देते । अरुण कमल के यहाँ कविता नारेबाजी के रूप में भी नहीं आती बल्कि कविता अपने ठेठ कविता रूप में यहाँ मिलती है । मार्क्सवाद की मदद से अरुण कमल कविता को सर्वहारा के समीप खड़ा करते हैं । मार्क्सवाद उनकी कविताई को दृष्टि देता है, पर वे उसका प्रयोग सीधे-सीधे ललकार के अर्थ में न करके उसके भीतर से जीवनी शक्ति संचित करते हैं जो न केवल गरीबों को उम्मीद बँधाती है, बल्कि उनके साथ मिलकर विषमताओं से लोहा लेने का ज़ज्बा भी पैदा करती है । उदय प्रकाश ने भी कविता के विषय में क्या खूब कहा है-

---

[68] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-३०
[69] डा. वीरेन्द्र कुमार, 'हिन्दी उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना', पृष्ठ-१७
[70] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ-२२२

मैं कुछ कविताएँ ज़रूर दे सकता हूँ
जिन्हें पढ़कर,
जब तुम कुछ करने लायक़ हो जाओगे
तब अपने लिए कुछ हासिल करने की उम्मीद
ज़रूर
हासिल कर सकते हो ![71]

कविता से यह उम्मीद की जानी भी चाहिए कि वह किसी के होठों पर हँसी ले आए। कविता से तोप, गोला–बारूद की दरकार करना खुद कविता की हत्या करना है । अरुण कमल कविता को शोर शराबे से दूर प्रतिरोधी रूप में देखते हैं, पर उनका प्रतिरोध ऐसा नहीं है कि जिसमें विखण्डन तिर रहा हो । उनका प्रतिरोध सत्ता, समाज और व्यवस्था की विसंगतियों से ज़रूर है पर उसमें सीधे–सीधे क्रांति की दरकार नहीं है, क्योंकि अरुण कमल जानते हैं कि कविता से प्रत्यक्षत: मुठभेड़ की अपेक्षा करने पर कविता के कवितापन को खतरा है । अरुण कमल चाहते हैं कविता के कविता पक्ष की रक्षा करते हुए प्रतिरोधी भूमिका को निभाना, और यह खासा मुश्किलों भरा काम है, जहाँ कवि को अपना धड़ अपने ही हाथों से थामे हुए कविता की दीपमालिका को बुझने से बचाना है । अरुण कमल मानते हैं कि आज का समय पहले से कहीं अधिक जटिल है, और इस कठिन समय में उससे भी जटिल है कविता करना । वे कहते हैं – "मुझको लगता है कि पूँजीवाद के इस बढ़े हुए दौर में हमारा जीवन निरन्तर नष्ट हो रहा है डर–भय, हताशा, संशय, अनिश्चय, हिंसा, स्वार्थ, यानी जितने भी बुरे अनिष्टकारी भाव हैं, वे प्रबल हैं । यहाँ सुख नहीं है । यहाँ खुशी नहीं है । यह संक्रमण का दौर है ।"[72]

पाश्चात्य चिंतन जगत में अकादमिक आचार्य के रूप में जाने जाने वाले मैथ्यू आर्नाल्ड का मानना था कि " कविता जीवन की आलोचना है ।"[73] लेकिन आज का कवि कविता को महज़ जीवन की आलोचना कहकर संतुष्ट नहीं होता, बल्कि उसे कविता पूँजीवादी समाज की आलोचना मालूम पड़ती है । यहाँ मैथ्यू आर्नाल्ड के माध्यम से

---

[71] उदय प्रकाश, 'अबूतर–कबूतर', पृष्ठ–२१
[72] सम्पादक–किशन कालजयी, 'संवेद' पत्रिका, अगस्त २००७, पृष्ठ–१११
[73] डा. निर्मला जैन, 'पाश्चात्य साहित्य–चिन्तन', पृष्ठ–१०७

यह बताना अभीप्सित है कि कविता को लेकर जो नए कवि की धारणा है, वह उसके सरोकारों से बाकायदा जुड़ी हुई है । अरुण कमल कविता को एक ख़ास ज़िम्मेदारी सौंपते हैं, और वह है पूँजीवादी ताकतों की सच्चाई को तार-तार खोल कर रख देने की। उनका मानना है कि " कविता इस पूँजीवादी समाज की आलोचना है, इसका प्रतिपक्ष । जो कविता आलोचना नहीं करती वह सहज ही सत्ता, समाज तथा व्यवस्था द्वारा अंगीकार कर ली जाती है । कविता, श्रेष्ठ कविता हमेशा ही अपने समाज की आलोचना करती रही है । वह आपको तोष नहीं देती । वह आपको बेचैनी और तड़प से भर देती है। वह जोर से ना कहती है ।"[74]

अरुण कमल कविता के भीतर मौजूद विविधता के कायल हैं, जो कविता वाच्यार्थ से आगे व्यंग्यार्थ की सीमा को छूती है, उनकी निगाह में वह कविता स्पेस तलब करती है । अरुण कमल कविता में संरचनात्मक अन्विति पर बल देते हैं । उनका मानना है कि कविता का ठोसपन ही कविता को बड़ा बनाता है । वे कहते हैं कि-" मुझे कविता में विपुलता और घनत्व पसंद है । अधिक से अधिक को, जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अन्तर्विरोधों को, कम से कम में व्यक्त करना, सर्वाधिक संश्लिष्ट बिम्बों के जरिए, जैसे निराला करते हैं, अपने श्रेष्ठ मुहूर्त में प्रसाद या मुक्तिबोध करते हैं, जैसे तुलसीदास या कबीर करते हैं ।"[75] निश्चित तौर पर अरुण कमल की काव्यदृष्टि व्यापक है । कम से कम शब्दों में अपनी बात कह देना जहाँ एक ओर बहुत सीधा लगता है, वहीं बहक जाने का खतरा भी सबसे ज्यादा है । अरुण कमल खतरे से वाकिफ़ हैं, वे कलाकार से जोखिम उठाने की अपील करते हैं । उन्हें लगता है कि कविता में शब्दों का कलन सही हो । जीवन की विसंगतियों को बिना शब्द बेजा किए, मितव्ययितापूर्वक कविता में उतारा जाए। अरुण कमल की काव्य दृष्टि की गहराई इस बात से भी आँकी जा सकती है कि वे किसी भी कवि के उत्तरोत्तर विकास पर ध्यान देते हैं। उनका मानना है कि किसी भी कवि की कविता पढ़ते वक्त उसके विकास को ध्यान में रखना बेहद आवश्यक है । वे मानते हैं कि किसी भी कवि के बारे में आमफ़हम राय उसकी एक-दो कविता पढ़कर कभी नहीं बनायी जा सकती । किसी भी कवि के उत्तरोत्तर विकास को जानने के लिए

---

[74] सम्पादक-किशन कालजयी, 'संवेद' पत्रिका, अगस्त २००७, पृष्ठ-११३-११४

[75] सम्पादक-किशन कालजयी, 'संवेद' पत्रिका, अगस्त २००७, पृष्ठ-११२

उसकी नयी–पुरानी रचनाओं में तारतम्य आवश्यक है, क्रमवार ढंग से कविताओं और उनके मानी को आत्मसात करके ही किसी भी कवि की काव्यदृष्टि को समझा जा सकता है । अरुण कमल कविता और उसके जीवन्त रिश्ते से भली–भाँति परिचित हैं ।

यदि यह कहा जाए कि अरुण कमल कविता को उसके अतीतपन के साथ देखने की दृष्टि मार्क्सवाद से प्राप्त करते हैं तो अतिशयोक्ति न होगी । मार्क्सवाद ही वह दृष्टि देता है जिसके सहारे अरुण कमल कविता को उसके कालबोध के साथ रखते हैं, ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के सहारे कविता की रीडिंग सेंसिबिलिटी को जानने–परखने की बात करते हैं । डॉ. नामवर सिंह ने ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के विषय में सही कहा है कि– "द्वन्द्वात्मक प्रणाली की पहली विशेषता है किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या विचार को अन्य वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं और विचारों के अविभाज्य प्रसंग में देखना । हिन्दी साहित्य कोई सर्वथा स्वतन्त्र विच्छिन्न और असम्बन्ध इकाई नहीं है । वह अन्य विचार–प्रणालियों, साहित्यों और परिस्थितियों से परस्पर सम्बद्ध है । यह सम्बन्ध सजीव है, मशीनों के पुर्जों की तरह एक जगह फिट किया हुआ नहीं है ।"[76]

द्वन्द्वात्मक प्रणाली की विशेषता ही होती है परस्पर चीज़ों को जोड़कर देखने की । डॉ. नामवर सिंह के इस कथन और अरुण कमल की काव्यदृष्टि को जब सामने रखेंगे तो पाएँगे कि दोनों एक ही बात कह रहे हैं, और वह है किसी रचना को उसके अतीतपन के साथ पढ़ने की । तभी एक दृष्टि के तहत अतीत और वर्तमान को जोड़ा जा सकता है । अरुण कमल यह भी मानते हैं कि किसी भी कवि की योग्यता को उसकी रचनाओं के परिमाण के सहारे नहीं जाना जा सकता । उनका मानना है कि रचना छोटी हो या बड़ी, उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता । वे कहते हैं कि– "वहम है कि लम्बी होने भर से कविता बड़ी हो जाएगी । वहम अभी भी कायम है, बदस्तूर । लेकिन कबीर के पद, विद्यापति के पद, तुलसीदास की विनय पत्रिका, ग़ालिब–मीर की ग़ज़लें, निराला का बहुलांश–क्या ये सब छोटी हैं? क्या कविता की श्रेष्ठता आयतन पर निर्भर है?"[77] कविता की श्रेष्ठता कभी परिमाण की मुहताज नहीं होती, उसके लिए तो गहन अवबोध की ज़रूरत पड़ती है । जो रचना जितनी ईमानदारी से अपने समय के काले–उजले पक्ष को

---

[76] डा. नामवर सिंह, 'इतिहास और आलोचना', पृष्ठ–१४०–१४१

[77] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–२१८

पकड़ेगी, वह उतनी ही बड़ी होगी । बहुत पहले बिहारी पर बात करते हुए आचार्य शुक्ल ने भी परिमाण के मसले को उठाया था । आचार्य शुक्ल ने कहा था कि–" किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिंमाण के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है ।"[78]

अरुण कमल की काव्यदृष्टि मँजी हुई है । कविता को लेकर जो भी सवाल बौद्धिक हलकों में उठता है अरुणकमल कमोबेश सब पर अपनी एक ख़ास दृष्टि रखते हैं । उनकी यह तीक्ष्ण अन्वीक्षण दृष्टि जहाँ उनको एक जागरूक कवि सिद्ध करती है वहीं कविता के रचाव से लेकर उसके पाठक तक पहुँचने की प्रक्रिया पर ज़ोरदार बातचीत यह बताती है कि प्रत्येक ईमानदार कवि खुद–ब–खुद आलोचक की भूमिका निभाता है । नि:संदेह अरुण कमल एक जिम्मेदार कवि हैं, जो कवि और कविता के जोखिम को भली–भाँति जानते और समझते हैं । अरुण कमल आज की कविता पर जब विचार करते हैं तो बेहद खेद के साथ कहते हैं कि आज की कविता लिखित परम्परा को तो बढ़ाती है, लेकिन मौखिक परम्परा को उतनी नहीं छूती जितना उसे छूना चाहिए । यहाँ अरुण कमल का सीधा–सीधा जुड़ाव भारत की लोक परम्परा से है । हम देख सकते हैं कि किसी भी देश की लोक परम्परा उसकी संस्कृति का आईना होती है, जिसमें देश विशेष की धरती अपनी पूरी चितवन के साथ हहराती जान पड़ती है । कितना अच्छा होता कि समकालीन कविता लुप्त होती लोक धुनों से अपना आत्मीय रिश्ता बना पाती । अरुण कमल कहते हैं कि " एक कवि जो होता है वह, जो प्रचलित भाषा है सिर्फ उसी का उपयोग नहीं करता या सिर्फ उसी का व्यवहार नहीं करता, वह उसके सारे स्रोतों को ढूँढ़ता है । बिरहा है, आल्हा है और इस तरह के जितने लोक रूप हैं इधर उनसे समकालिक कविता की दूरी बढ़ी है ।"[79] अरुण कमल समकालीन कविता से अपेक्षा रखते हैं कि वह वाचिक परम्परा का खयाल रखेगी, क्योंकि आज की बाजारवादी संस्कृति में अगर सबसे ज्यादा किसी को खतरा है तो वह लोक को है । आज के हाट–बाजार से दिनों–दिन लोक गायब होता जा रहा है । अब वह दिन दूर नहीं जब हमसे हमारी पहचान ही छीन ली जाएगी, ऐसे में एक जागरूक कवि ही लोक को

---

[78] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ–१६८

[79] अरुण कमल, 'वसुधा–६२', (सितम्बर २००४) पृष्ठ–६२

छीजने से बचा सकता है । आखिर क्यों न हो, एक कवि ही तो जीवन को बचाता है । समय की जंग सब पर लग जाती है, लेकिन कवि का मानसलोक कभी भी समय की हद में नहीं आता वह समय के क्षेत्र को लाँघता हुआ जब–तब अपनी दुर्जेयता का बोध कराता रहता है । अरुण कमल समकालीन कवि को चुनौती देते हैं कि वह लोक को हर हालत में बचाए, कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र ही– शास्त्र हर तरफ दिखे और जनसंपृक्ति का माध्यम हमारे बीच से गुल हो जाए । वे ज़ोर देकर कहते हैं कि "जो बड़ा कवि होता है वह शास्त्रीय और लोक, इन दोनों का जो रसायन तैयार करता है मिलाकर के और निरन्तर उसकी कोशिश होती है कि यह जो हमारी लिखित कविता है यह वाचिक परम्परा में शामिल हो जाय । यह एक बड़ी चुनौती है ।"[80] अरुण कमल का कवि व्यक्तित्व इस चुनौती से दो–दो हाथ करने के लिए स्वयं को भी तैयार करता है । हम देख सकते हैं कि अरुण कमल की ढेरों कविताओं में लोक तत्व की आवृत्ति मिलती है । उन्हें जहाँ भी कोई शब्द ऐसा मिलता है जो अब ज्यादा उपयोग में नहीं है, उसको वे अपनी कविता का उपजीव्य बनाकर पेश करते हैं । बतौर उदाहरण 'जेल का अमरूद' शीर्षक कविता देखी जा सकती है–

बहुत दिनों से टिका कर रखा था
बैरक के पीछे झुलसे हुए पेड़ पर
एक अमरूद
पहले दिन जब अचानक उधर से गुजरते
सिहुली लगी डालों पत्तों के बीच
पड़ी थी नज़र
तो अभी–अभी फूल से उठा ही था फल
हरा कचूर ।[81]

इस कविता में आया 'टिका' शब्द हो या फिर 'सिहुली'लगी हुई डाल, दोनों ही जगह हम कवि की ग्रहणशीलता को बख़ूबी देख सकते हैं । कवि ने ठेठ भारतीय समाज

---

[80] अरुण कमल, 'वसुधा'–६२(सितम्बर २००४), पृष्ठ–६२
[81] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–१५

में प्रयुक्त 'टिकाना' क्रिया से 'टिका'शब्द लिया है और लोक के बीच गुम होते शब्द 'सिहुली' को अपनी कविता में जगह देकर उसे विलुप्त होने से बचाया है । 'कचूर' शब्द का प्रयोग भी कविता के मानी को बढ़ाता है । इस तरह एक कवि के रूप में अरुण कमल हर जगह संघर्ष करते हैं । चाहे काव्यभाषा में तराश उत्पन्न करने का मसला हो या फिर शिल्प में चारुता उत्पन्न करने की ज़रूरत । एक समझदार कवि की हैसियत से अरुण कमल अपनी काव्यदृष्टि को व्यापक करते जाते हैं, उनके ज़ेहन में यह बात शुरू से आखिर तक रहती है कि जीवन अपने पूरेपन के साथ कविता में उतरे । जीवन की संश्लिष्टता के द्वारा जहाँ कविता में बिखराव आने का भय होता है, वहाँ भी अरुण कमल एक समझदार कवि की तरह कविता को कसककर टूटने, भहराने और मोच खाने से बचाते हैं । यह उनके कवि व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है । उनकी कविता की आँख अर्जुन की तरह केवल चिड़िया की आँख भर नहीं देखना चाहती बल्कि अपने आस-पास के सारे घटनाक्रमों को अपनी पुतली में बसा लेना चाहती है । यथार्थ से गहन नाता और जीवन के प्रति यह असीम राग ही उन्हें आमजन का कवि बनाता है । इसी समग्रता परक दृष्टि के मानिन्द हम कह सकते हैं कि अरुण कमल अपने समकालीनों के बीच सबसे अलग और एक ख़ास तरह के कवि हैं ।

तीसरा अध्याय

अरुण कमल की काव्य संवेदना और प्रतिरोध के आयाम

(क) सामाजिक प्रतिरोध

(ख) सांस्कृतिक प्रतिरोध

(ग) राजनैतिक प्रतिरोध

तीसरा अध्याय

अरुण कमल की काव्य संवेदना और प्रतिरोध के आयाम

(क) सामाजिक प्रतिरोध

अरुण कमल की कविताएँ सामाजिक सरोकारों से गहरे जुड़ी हुई हैं, जिन्हें समाज से विच्छिन्न करके नहीं समझा जा सकता । इन कविताओं के पाठ और इन पाठों से निकली अन्तर्ध्वनि को तब तक नहीं ग्रहण किया जा सकता जब तक कि इनका समाज से तारतम्य न स्थापित किया जाए । समाज से रूप-रस ग्रहण करती हुई अरुण कमल की कविताएँ सामाजिक वर्जनाओं का विरोध करके ही अपनी पहचान बनाती हैं । किसी भी कवि के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने युग की सही समझ हासिल करे, अपने आस-पास घटित हो रहे घटनाक्रमों को समझे । अपनी समझ को सृजनात्मक दायरे में लाए तभी वह अपने देश- काल, एवं रचना दोनों के साथ न्याय कर पाता है । अरुण कमल युगीन समय को पूरी शिद्दत के साथ कविता में उतारते हैं, समय उनकी उंगलियों की पोरों से नहीं निकल पाता क्योंकि वे पूरी ईमानदारी से समय के पहिए को पकड़ते हैं ।

रचना के लिए ख़ामखयाली नहीं, यथार्थ का गहन अवबोध ज़रूरी है । कविता के भीतर यथार्थ की मौजूदगी ऐसी हो कि कविता जहाँ अपने समय के विमर्शों से सीधे जुड़े वहीं अपने समय की कुरूपताओं के प्रति एक ख़ास तरह का प्रतिरोध भी प्रस्तुत करे । यथार्थ ही वह बेचैनी पैदा करता है जिससे प्रेरित होकर कवि एक नई सृष्टि रचने के लिए बढ़ता है। इस नकली दुनिया में एक रचना ही तो है जो सच का बयान प्रस्तुत करती है; ख़ामखयाली से दूर जीवन की वास्तविकता को खोलकर रखती है । हार्वर्ड फास्ट यथार्थ के विषय में सही फरमाते हैं कि-"इस ख़यायली दुनिया में यथार्थ की कोई जगह नहीं है । यथार्थ उसके लिए खतरनाक है । यथार्थ तो व्याकुलता पैदा करता है, शक्तियों की सच्ची प्रकृति की पड़ताल में जाने को बाध्य करता है तथा एक ऐसे क्षोभ को पैदा करता है जो कभी लपटों में बदल सकता है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि

यथार्थ एक किस्म की पक्षधरता की माँग करता है, क्योंकि सच्चाई हमेशा पक्षधर ही होती है ।"[82] दुनियावी तामझाम के बीच भले ही यथार्थ कोई महत्व न रखता हो, लेकिन कला– जगत में यथार्थ की अपनी महत्ता है । एक समझदार कवि हमेशा विसंगतियों से लोहा लेता है; वह सच का तलबगार होता है । इस मायने में अरुण कमल को सच का हमराह कहना ही उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों के साथ न्याय करना है । आठवें दशक से अरुण कमल ने अपनी सृजन– यात्रा शुरू की थी । अब तक उनके चार काव्यसंग्रह आ चुके हैं । अपनी प्रत्येक रचना में अरुण हर बार नए तरह के प्रश्नों से जूझते नज़र आते हैं । उनका सृजनधर्मी व्यक्तित्व हर बार अंधेरे में अपना रास्ता तलाश ही लेता है । उनकी पक्षधरता के विषय में श्रीराम त्रिपाठी ने सही कहा है कि–"वे पक्षधर हैं उन लोगों के जो दुनियाँ को सुन्दर बनाने में लगे हैं। इसीलिए वे शोषण, अत्याचार, अन्याय जैसी घिनौनी और कुरूप चीज़ों के निर्माताओं के घनघोर विरोधी हैं । मानवीय और सुन्दर चीज़ों को बचाने के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं ।"[83]

'अपनी केवल धार' काव्यसंग्रह की कविता 'धरती और भार' में अरुण कमल ने ग्रामीण स्त्री की नियति को दर्शाया है । ग्रामीण स्त्री प्रसव वेदना से तड़प रही है, बावजूद इसके उसे पानी लेने रुखड़ी सड़क तक जाना ही है, उसे दो पल को भी आराम नहीं । उसका जीवन संघर्षों में शुरू होता है और संघर्षों के बीच खत्म भी हो जाता है । अरुण कमल ग्रामीण स्त्री को नल तक जाने से रोकते हैं । यह रोक–टोक केवल नल तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समाज में औरतों का जो शोषण खुले आम हो रहा है, उसके प्रचलनात्मक रूप के प्रति टोका–टोकी के भाव को भी लिए हुए है –

भौजी, डोल हाथ में टाँगे
मत जाओ नल पर पानी भरने
तुम्हारा डोलता है पेट
झूलता है अन्दर बँधा हुआ बच्चा
गली बहुत रुखड़ी है

---

[82] हार्वर्ड फास्ट, 'साहित्य और यथार्थ', पृष्ठ–०६
[83] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२१९

गड़े हैं कंकड़-पत्थर
दोनों हाथों से लटके हुए डोल
अब और तुम्हें खींचेंगे धरती पर
झोर देंगे देह की नसें
उकस जाएँगी हड्डियाँ
ऊपर नीचे डोलेगा पेट
और थक जाएगा बउआ।[84]

समाज में स्त्री का जो शोषण खुलेआम चल रहा है, अरुण कमल उसकी केवल एक-दो जगह नोटिस नहीं लेते, बल्कि जहाँ भी उन्हें स्त्री पीड़ित नज़र आती है, उस हरेक जगह अरुण कमल स्त्री के अधिकारों को लेकर आवाज़ उठाते हैं। पितृसत्तात्मक संस्कृति ने स्त्री से उसका सब कुछ छीन लिया है। काठ के मानिन्द चारदीवारी में कैद स्त्री सारे दुखों को सहती है, कभी चूँ से चाँ तक नहीं करती; उसकी इसी सीधाई का फायदा पुरूष समाज उठाता है। पुरुष वर्चस्व के भीतर स्त्री अपमानित-तिरस्कृत ही नहीं होती, बल्कि हर रोज़ नए ढंग से उत्पीड़ित होती है। 'एक बार भी बोलती' शीर्षक कविता स्त्री के इसी अनबोलेपन को उघाड़ती है ताकि वह पुरुष से अपने अधिकारों को लड़कर हासिल कर सके-

अभी भी मैं समझ नहीं पाया
कि वह कभी बोली क्यों नहीं
मरते वक्त भी वह कुछ नहीं बोली
आँखें बस एक बार डोलीं और ....[85]

भारतीय स्त्री आए दिन बलात्कार, हिंसा और व्यभिचार का केन्द्र बनती है। उसकी सेक्सुअलिटी को रोज़-ब-रोज़ निशाना बनाया जाता है। आज की इस उत्तर आधुनिक दुनिया में स्त्री-देह का बाजारीकरण किया जा रहा है। सौन्दर्य के बहाने स्त्री की यौनिकता को उभारकर बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल बन रहे हैं। डिस्को-क्लब से लेकर, पब, बार या आम गृहस्थ जिन्दगी में भी स्त्री महज़ खिलौना समझी जा रही है। ऐसे में

---

[84] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ-१९
[85] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-१९

ज़रूरी है कि स्त्री को शिकार बनाना बंद हो । स्त्री के होने न होने को लेकर जो पुरुष की अधिकार चेतना काम कर रही है, ज़रूरी है कि उसकी पकड़ शिथिल हो तभी स्त्री की हँसी, उसका निजी स्वत्व वापस लाया जा सकता है । 'सूद्र, पशु, नारी' नामक लेख में डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि–" बहुत लम्बे तर्क और शास्त्रार्थ में जाए बिना केवल इतना स्पष्ट करना ज़रूरी है कि किसी भी स्त्री के व्यक्तित्व का अधिकार किसी भी धर्म, सभ्यता या समाज –व्यवस्था की कृपा का परिणाम नहीं है । उलटे स्त्री के नैसर्गिक व्यक्तित्व का हनन हर सभ्यता का सबसे बड़ा खोखल है ।"[86]

आज आवश्यकता है स्त्री की क्षमताओं पर विश्वास करने की, श्रेष्ठता के दंभ से बाहर आकर उसके शक्ति –स्वरूपा रूप को जानने समझने की । ज्ञान–विज्ञान से लेकर खेलकूद तक स्त्री ने हर जगह अपनी क्षमता और योग्यता का परिचय दिया है, इसलिए अब यह नहीं होने वाला कि पुरुषवर्ग सर्वहारा जानकर उस पर जुल्म–ओ–सितम तेज करे । उसके धैर्य की परीक्षा न ही ली जाए तो बेहतर है । 'फिर भी' नामक कविता में अरुण कमल स्त्री के प्रतिरोधी तेवर को उसके ज़ज़्ब फ़रोशी में देखते हैं–

और जिन औरतों ने चौखट के पार कभी
पाँव नहीं डाला
उन्होंने घेर ली देश की संसद अचानक
इसीलिए उम्मीद है कि मेरा घर
मुझे मिलेगा वापस
उम्मीद है कि जनरल डायर जिन्दा नहीं बचेगा
अभी भी जालियाँवाला बाग में
अपने पति की लाश अगोरती बैठी है वो औरत
कि लोग सुबह तक आएँगे जरूर ।[87]

अरुण कमल को विश्वास है कि जब औरत चाह लेगी, उन सारे गढ़ों मठों को ध्वस्त कर देगी, जिनके माध्यम से उसके अस्तित्व को नकारा जाता रहा है । आज भी

---

[86] डॉ.पुरुषोत्तम अग्रवाल, 'संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध', पृष्ठ–६९

[87] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–७२–७३

हम देख सकते हैं कि लड़की के पैदा होने पर घर–परिवार में हताशा छा जाती है, सब की ख़्वाहिश होती है कि घर में लड़का जन्म ले । लड़की के जन्म से मातम की तरह छाई हीन ग्रन्थि को खंडित करना बेहद आवश्यक है । वंश– परम्परा का वाहक सिर्फ़ लड़का ही नहीं होता अपितु लड़की भी वंश को आगे बढ़ाने का आवश्यक कारक होती है । उसे भी प्यार–दुलार, अपनत्व की ज़रूरत है । अरुण कमल अपनी कविता के माध्यम से नवजात बच्ची को प्यार पहुँचाते हैं–

जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुजार दी जिन्दगी
जिस माँ ने अपने पति की मार चुपचाप सही
और जिस पिता ने देखा है तिलक दहेज का क्रूर व्यापार
वे कैसे खुश होंगे ?
लेकिन आज वही नहीं है दुनिया उतनी कठोर
जो कल या परसों थी
समय के प्रवाह में
तुम्हारे ही लिए घुल रही है दुनिया
जल्दी–जल्दी बढ़ो मेरी बच्ची
जल्दी–जल्दी ।[88]

आज की दुनिया पहले के सामंती दौर की तरह नहीं है जहाँ स्त्री को साँस लेने तक की मनाही थी, आज स्त्री को इतनी स्वतंत्रता बख़्शी गयी है ताकि वह हाथ–पैर डुला सके । ना नुकुर के बाद भी पितृसत्ता ने स्त्री को थोड़े –बहुत अधिकार ज़रूर दिए हैं, लेकिन वहीं स्त्री का शोषण करने में पितृसत्तात्मक व्यवस्था कभी पीछे नहीं हटती । सांस्कृतिक परम्पराओं वाले इस देश में आदर्श स्थिति भी कम दोषपूर्ण नहीं है । स्त्री को हमेशा ही दैवीय सिंहासन पर बिठाया गया है और दैवीय महिमा की आड़ लेकर घर से लेकर विद्यालयों तक उसका मानमर्दन जारी है । आवश्यकता है स्त्री के भीतर चेतना जागृत करने की, ताकि वह मानव अधिकारों के प्रति सचेत हो सके । स्त्री को उसकी

---

[88] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–४८–४९

आन्तरिक शक्ति से परिचित कराने में अरुण कमल की कविताएँ अहम भूमिका निभाती हैं । इसी क्रम में उल्लेखनीय है 'स्वप्न' नामक कविता, जहाँ एक स्त्री हर बार पति द्वारा पिटती है और पिटाई के बाद मुक्ति की आकांक्षा लिए दूर–दूर तक भटकती है । हर बार उसे लगता है कि आखिर पति ही वह आसरा है जिसके सहारे उसका होना मायने रखता है, वह पति की ओर फिर लौटती है । अपने अहम में चूर पति उसके प्रेम की कद्र नहीं करता, उल्टे उसका मज़ाक बनाता है । इस बार दमन पहले से भी अधिक तीव्र होता है । स्त्री घर छोड़कर यहाँ–वहाँ भटकती ज़रूर है लेकिन हार नहीं मानती, उसे विश्वास है कि वह अपने अधिकारों को हासिल करके रहेगी –

वह बार–बार भागती रही
बार– बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाए मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न ।[89]

अरुण कमल देश के तथाकथित लोकतंत्र से परिचित हैं, जहाँ सारी संभावनाएँ कागजी पैरहन बनकर रह जाती हैं । अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से सिर्फ वस्तुस्थिति का चित्राँकन ही नहीं करते बल्कि असामाजिक तत्वों की ख़बर भी लेते हैं । देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के विषय में उनकी सोच देखने लायक है । एक बेहद संवेदनशील नागरिक होने के नाते अरुण देश के लोकतंत्र की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "अब हम अपने देश के जनतंत्र के बारे में विचार करें । एक औरत सड़क पर निकलती है और उसकी इज्ज़त लूटी जाती है । अपना हक़ माँगने वाला खेत मज़दूर बिहार में गोलियों से भूना जा रहा है । हज़ारों लोग सहसा एक रात यूनियन कार्बाइड की ज़हरीली गैस से मारे जाते हैं । और यह जनतंत्र है । जहाँ आधी आबादी को भरपेट भोजन नहीं, जहाँ दो तिहाई आबादी निरक्षर वहाँ जनतंत्र कहाँ? यह मानव–गरिमा के हनन पर आधारित समाज–व्यवस्था है ।"[90] अरुण कमल की आपत्ति विचारणीय है ।

---

[89] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–२४–२५
[90] अरुण कमल, 'कविता और समय', पृष्ठ–१८५

स्वतंत्रता के बाद न केवल देश की योजनाओं में बदलाव आया, बल्कि आम-आदमी की सोच में भी बदलाव आया । सामाजिक वर्जनाएँ जस की तस रहीं । हाँ, इतना ज़रूर हुआ कि हम कहने को प्रगतिशील हो गए लेकिन हमारी कथनी और करनी में फाँक बढ़ती गयी । आज की इस ग्लैमराइज़ सोसाइटी में उन्हें ही जगह नहीं जो मेहनत और श्रम के साथ हमारे रहने की व्यवस्था करते हैं, जो हमारी दिनचर्या की सारी ज़रूरतें पूरी करते हैं । अरुण कमल अपनी कविता में उन सारे लोगों को स्थान देते हैं जो खुद गन्दगी में रहकर हमारे लिए साफ सुथरी ज़मीन मुहैया कराते हैं । अरुण कमल की कविता गंदगी में भी सौन्दर्य तलाशती है, उसके लिए गंदगी अस्पृश्य नहीं, बल्कि जीवन है, जहाँ से वह रस खींचती है । काबिले-गौर है 'खुशबू रचते हैं हाथ' नामक कविता, जहाँ गन्दी बस्तियों में रहने वाले अगरबत्तियाँ बनाकर अपनी जीविका चलाते हैं; जो खुद नारकीय जीवन जीते हैं मगर लोगों को नफ़ासत भरी जिन्दगी जीने के साजो-सामान उपलब्ध कराते हैं । प्रस्तुत कविता तमाम निर्धन लोगों के प्रति कवि की श्रद्धाञ्जलि है-

यहीं इस गली में बनती हैं
मुल्क की मशहूर अगरबत्तियाँ
इन्हीं गन्दे मुहल्लों के गन्दे लोग
बनाते हैं केवड़ा गुलाब खस और रातरानी
अगरबत्तियाँ
दुनिया की सारी गन्दगी के बीच
दुनिया की सारी खुशबू
रचते रहते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ
खुशबू रचते हैं हाथ ।[91]

विष्णु नागर ने कविता के विषय में सही कहा है -" कविता के लिए कुछ भी पवित्र या अपवित्र नहीं है । वह मन्दिर नहीं है । वह घर है । वहाँ पूजा भी होती है और

[91] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ-८०-८१

बच्चा टट्टी–पेशाब भी करता–फिरता है । वहाँ झगड़े भी होते हैं और प्रेम भी होता है । मृत्यु भी होती है और जन्म भी । वहाँ एकान्त भी है और सार्वजनिकता भी ।"[92] अरुण कमल की कविता भी कुछ इसी तरह की है । अख़बार भी जिन लोगों की ख़बर नहीं लेता, कविता उनकी ख़बर लेती है । नक्सलवादियों पर हुए लाठी चार्ज में कई आन्दोलनकर्मी मारे जाते हैं, मीडिया कुत्ते–बिल्लियों के जनने की ख़बर बहुत बड़े फार्म में छापती है, लेकिन उसे तनिक भी अवकाश नहीं कि उन लोगों की भी शिनाख़्त कर सके जो पुलिस फ़ायरिंग में शहीद हुए–

एक ख़बर जो कहीं नहीं थी :
किश्ता गौड़ को फाँसी हो गई
एक ख़बर जो ख़बर नहीं थी:
भूमैया को फाँसी हो गई ।[93]

कई कवियों के साथ एक ख़ासी दिक्कत यह होती है कि वे जब अपने आस–पास के जीवन को चुनते हैं तो निरी भावुकता में आकर । परिणामत: जीवन नकल की तर्ज पर उल्टा–सीधा उनकी कविता में दर्ज़ होता है । उन्हें लगता है कि जीवन को उतारने में वे सफल रहे, अलबत्ता कविता नास्टैल्जिया की शिकार हो जाती है । " समकालीन कविता के सामने जो चुनौतियाँ हैं, उनमें से एक निरी भावुकता और निरी बौद्धिकता के बीच संतुलन और सामंजस्य स्थापित करना है । हालाँकि इस दिशा में कई कवियों ने सार्थक और प्रेरणादायी प्रयास किया है फिर भी संकट अभी कायम ही है । इसके लिए ज़रूरी यह है कि कविता को ही जीवन बनाने का प्रयास किया जाय ।"[94] कविता को जीवन बनाने में अरुण कोई कोर कसर नहीं छोड़ते, उनका तो पूरा प्रयास होता है कि जीवन अपनी सप्तरंगी आभा के साथ कविता में निथर कर आए । जीवन के प्रति ख़ासी दिलचस्पी उन्हें जीवन राग का कवि सिद्ध करती है । 'सोए में चलना' नामक कविता में कवि जेल में बंद ऐसे व्यक्ति के प्रति खिंचाव महसूस करता है जो पाप करने

---

[92] विष्णु नागर, 'कविता के साथ–साथ', पृष्ठ–१४१
[93] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–१५
[94] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–३०४

के अपराध में हवालात की हवा फाँक रहा है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि वह पापी नहीं है । अरुण कमल बरबस ऐसे तमाम लोगों के प्रति कृतज्ञ हो उठते हैं जिनका कोई नहीं है, और जो समाज के सबसे दीनहीन मानुष हैं –

केवल शब्दों का फाहा लिए
जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
जो सबसे कमजोर है
जो अपने कौर के लिए भी हाथ उठा नहीं सकता
जो न शासक बनना चाहता है न शासित ।[95]

अब तक अरुण कमल के चार काव्य संग्रह आ चुके हैं, जो इस प्रकार हैं– 'अपनी केवल धार', 'सबूत', 'नये इलाके में' एवं 'पुतली में संसार' । इन चारों काव्य संग्रहों में कवि की कविताई उत्तरोत्तर विकसित होती चली गयी है। अरुण कमल के सारे ही कविता संग्रहों में सामाजिक जड़ता के प्रति प्रतिरोधी चेतना देखते बनती है, अरुण कमल की कविताएँ सामाजिक जड़ता के तिलस्म को उसकी तह में जाकर खोदने का काम करती हैं । 'अपनी केवल धार' कवितासंग्रह में 'धरती और भार', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', 'जितना दो आँखें', 'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया', 'झरना', 'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे' 'वे और हम', 'भूसी की आग', 'उड़ी एक चिड़िया' सरीखी कविताएँ सामाजिक प्रतिबद्धता उत्पन्न करती हैं । अरुण कमल दलितों और गरीबों के हमनवा कवि हैं । सामाजिक कैफियत उनकी कविताओं के एहसासात में अपने पेचोंखम के साथ आती है । 'सबूत' कविता –संग्रह के विषय में विधि शर्मा ने कहा है कि "सबूत में ऐसी कविताएँ ज्यादा हैं जिनमें सामान्य आदमी के दु:ख दर्द में कवि सामान्य आदमी की तरह शामिल हुआ है । उनकी इन कविताओं में कहीं भी उत्तेजना नहीं है मगर बेधकता है, चुभन नहीं है, मगर भीतर पहुँचकर विचलित कर देने की शक्ति है । यह कविता की विकसित क्षमता की पहचान है । ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता को एक नया

---

[95] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–२३

स्वर देती हैं । ये वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध, संघर्षशील मानव के पक्ष में, जीवन मात्र के पक्ष में सबूत हैं ।[96]

इसी क्रम में 'एकालाप' कविता को देखना उचित होगा । यह कविता गाँव के भटके हुए एक युवक की दु:खभरी दास्तान है जो सामाजिक तौर पर अत्यंत पिछड़ा हुआ है । सही दिशानिर्देशन के अभाव में यह युवक हत्या जैसे जघन्य कृत्य तक को अंजाम देता है । बाद में पता चलता है कि उसकी गरीब माँ भूख से दम तोड़ देती है, छोटा भाई सही दिशा न पाकर आवारा हो जाता है । इस कविता के माध्यम से अरुण कमल ने स्थिति विशेष के प्रति प्रतिरोध दर्ज किया है । इस युवक की तरह समाज में अनेक मिल जाएँगे जो अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं । यह कविता अपने समय को उसकी बारीकी से पकड़ती है । कविता जितनी देखने में सहज दिखती है, उतनी है नहीं। कवि ने आस-पास के यथार्थ को पूरी संवेदना के साथ पकड़ा है । युवक का आत्मस्वीकार उसके प्रति खीझ नहीं पैदा करता; बल्कि उसकी नासमझी के प्रति पाठक की गहरी सम्पृक्ति सी बन जाती है-

झड़ना था तो खेत में झड़ता
दाई माई चुन लेतीं
झड़ना था तो राह में झड़ता
चिड़िया चुरगुन चुन लेतीं
अब तो खंखड़ हूं मैं केवल
दाना था सो घुन खा बैठे ।[97]

जब भी समाज में बौद्धिक स्तर तक अराजकता आ जाती है, महसूस होने लगता है कि उम्मीद की कोई भी किरण नहीं है । ऐसे में ऐन मौके पर कविता अपना करतब दिखाती है । समाज में गहरे धँसे नासूर कविता में शमित होते हैं । अरुण कमल आस-पास बुनी जा रही सामाजिक विसंगतियों को नज़रअंदाज नहीं करते बल्कि उस टीस को कविता में उतारने का काम करते हैं । अत्याचारों से कराहती हजारों आँखें कवि के

---

[96] विधि शर्मा, 'कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य', पृष्ठ-६४
[97] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-२२

ज़ेहन में एकाएक फ्लैश की तरह चमकती हैं, कवि उन आँखों की निरीहता और मदद को आजिज़ उनकी आवाज़ से खुद तड़प उठता है मानो जैसे अब कोई बाधा उसे लिखने से रोक नहीं सकती, इस तरह हाशिए पर पड़ी उन आवाजों की रक्षा का पूरा दारोमदार कवि पर आ जाता है ।

राजेश जोशी कविता के विषय में सही कहते हैं कि–"दरवाज़े पर दस्तक होती है। यह दस्तक की आवाज़ है जो बिना दरवाज़ा खोले अंदर आ जाती है । कविता भी ऐसी ही आवाज़ है । वो अंदर आ जाती है । दरवाज़े के खुलने का इन्तजार नहीं करती । तुम्हारी इज़ाजत की उसे ज़रूरत नहीं । वो इतनी पजेसिव है कि तुम्हें किसी और काम के लिए वह मुक्त नहीं होने देगी । कवि अपनी ही कविता का उपनिवेश है ।"[98] अरुण कमल जानते हैं कि सामाजिक वर्जनाओं का विरोध करना इतना आसान नहीं है, यह ख़ासा दिक्कत भरा काम है । इसके लिए खुद आत्मसंघर्ष करने की ज़रूरत है । सबसे कठिन काम होता है अपने भीतर छिपे शोषक को निकाल फेंकना । मध्यवर्ग की अवसरवादिता एवं अविश्वसनीयता से अरुण परिचित हैं । यही वज़ह है कि वे सबसे पहले उसी पर चोट करते हैं । वे मध्य वर्ग से अपील करते हैं कि वह सर्वहारा की तकलीफों को समझे, उसके जीवन युद्ध में उसका दाहिना हाथ बने । 'अंत' नामक कविता मध्य वर्ग को झकझोरती है –

आखिर इसी जान
इसी देह की खातिर तो सब किया
जहाँ बोलना था चुप रहा
जिससे बोलना बंद कर देना था उससे
हँस हँस कर बोला ।[99]

अरुण कमल जहाँ अत्याचारों की फेहरिस्त खोलते चले जाते हैं वहीं आगे बढ़कर जनता के मुक्ति संग्राम में हिस्सा भी लेते हैं । सर्वहारा की अथाह जीवनी शक्ति पर उन्हें पूरा विश्वास है । बकौल श्रीराम त्रिपाठी, " अरुण कमल जहाँ लुटते और

---

[98] राजेश जोशी, 'कवि की नोटबुक', पृष्ठ–१०९

[99] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–२६

अत्याचार सहन करते लोगों को जागरूक करते हैं वहीं शोषक–अत्याचारी पर झपटते भी हैं । वे जानते हैं कि सर्वहारा के पास गँवाने को कुछ भी नहीं है । इसलिए संघर्ष में उन्हें पाना ही पाना है ।"[100] अरुण कमल रात में चल रहे ढाबे को देखकर खुश होते हैं, क्योंकि यहाँ भोजन करने आने वालों में बहुसंख्यक मजदूर तबका है जिसकी भूख को मिटाने का काम यह 'रात का ढाबा' करता है–

जब सारे फूल मूँदते हैं अपना शरीर
ठीक तब खुलते हैं फूल कुछ रात में
बिलों से निकलती है मर्म की मिट्टी
प्रगट होता है छुपा हुआ जल पत्ती की नोक पर
जब ठंडे हो रहे होते हैं सारे चूल्हे
तब पूरे ताव पर होता है रात का ढाबा ।[101]

आज जिस परिवेश में हम जी रहे हैं, वह बेहद खतरनाक समझा जा रहा है । हर व्यक्ति जानता है कि सच क्या है और गलत क्या है, बावजूद इसके वह सच का साथ नहीं देता, क्योंकि उसे अपनी जान का खतरा है । चाहते सब हैं कि समाज बदले, समाज की रुढ़ियाँ बदलें मगर हर कोई अपना दामन बचाकर जिम्मेवारी पड़ोसी के कंधे दे मारता है । हर जगह असुरक्षा है, डर है, संशय है । हालत बद से बदतर हो रही है, समाज में अन्याय को बर्दाश्त करने वालों की जमात बेशक बढ़ रही है । अरुण कमल की 'लोककथा' नामक कविता इसी को दिखाती है । अरुण कमल ने इस कविता में दिखाया है कि किसान के घर में चोरी होती है । डकैतों से लड़ता हुआ किसान का लड़का मारा जाता है, जिसकी अभी नई–नई शादी हुई है । घर में मातम का माहौल छा जाता है । किसान अपने लड़के का शव जब अंतिम संस्कार के लिए ले जाता है तो उसे चार कंधे तक नसीब नहीं होते । ऐसा भी नहीं है कि पड़ोसी इस घटना से वाकिफ़ नहीं लेकिन न तो वे किसान के प्रति संवेदना ज्ञापित करते हैं और न ही कंधा देने पहुंचते हैं, क्योंकि उनमें से सभी डर रहे होते हैं कि डकैत बुरा मान जाएँगे । अरुण

---

[100] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२२०
[101] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–३८–३९

कमल ने यथार्थ को किस्सागोई का रूप देकर प्रकट किया है, यथार्थ तक पहुँचने हेतु अरुण द्वारा लिया गया मिथ का सहारा आज की स्थिति पर गहरा व्यंग्य है । लोगों के सिले होंठ और उनकी चुप्पी पर व्यंग्य है–

पर गाँव का एक आदमी नहीं आया
सबने सोचा डकैत बुरा मान जाएँगे
तब तीन जन ने अर्थी उठायी
और बेटे को बाप ने आग दी
किस्सा गया वन में
सोचो अपने मन में ।[102]

उपरोक्त कविता में हम देख सकते हैं कि अरुण कमल केवल घटना का उल्लेख भर नहीं करते बल्कि सोचने के लिए विवश भी करते हैं । कविता की अंतिम पँक्ति पूरी कविता का निचोड़ है, जहाँ कवि किस्सागोई को यथार्थ की सिंफनी देता है, साथ ही स्थिति विशेष के प्रति ज़ोरदार प्रतिरोध भी दर्ज़ करता है । अरुण कमल जानते हैं कि डर को निर्मूलित करने की आवश्यकता है, क्योंकि डर के साए में घुट–घुट कर रहने वाली स्थिति ज्यादा खतरनाक होती है । कई बार व्यक्ति असुरक्षा से बचने के लिए चुप्पी अख़्तियार करता है, वह महसूस करता है कि वह तो सुरक्षित है, क्योंकि उसका तो घटना से दूर–दूर तक का कोई लेना–देना नहीं । ऐसे में होता यह है कि या तो वह डर–डर के मर जाता है या फिर कोई अन्य घटना परजीवी की तरह उसकी देह में आ घुसती है । शुतुर्मुर्गीधर्म से चिपका हुआ व्यक्ति बच नहीं पाता । येन–केन प्रकारेण आखिर मारा ही जाता है । अरुण कमल की 'संयोग' कविता इसी को लेकर है, जहाँ हरिनन्दन नाम का एक युवक हैजे की सनसनी ख़बर को सुनकर सूरत से अपने घर की ओर भागता है । पता चलता है कि वह जिस गाड़ी में सफर कर रहा होता है, वही दुर्घाटनाग्रस्त हो जाती है और वह बाल–बाल बच जाता है । वह ईश्वर का शुक्रिया अदा करता है कि उसे दुबारा जीवन मिला । रास्ते में चोर उसका सामान लूट लेते हैं, लेकिन उसकी जान बख़्श देते हैं । वह एक बार फिर ईश्वरी कृपा के आगे नतमस्तक होता है

---

[102] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–५७

कि सौ टके की जान तो बची । घर पहुँचने के बाद वह निश्चिंत होता है कि उसे अब कोई भय नहीं, लेकिन ऐन मौके पर एक पुश्तैनी दुश्मन सोते समय उसका गला साफ कर जाता है । बाद में पता चलता है कि जिस अफवाह को सुनकर हरिनन्दन सूरत से भागा था, वह झूठी निकलती है, इस तरह हम देख सकते हैं कि हरिनन्दन अपने डर की भेंट आप ही चढ़ जाता है–

यही सोचते–सोचते वह कच्चे घर के आँगन में
झोलंग खाट पर पड़ा तारे ताकता सो गया
और उसी रात एक गोतिया ने पुश्तैनी दुश्मनी में मौका पा
उसका काम तमाम कर दिया ।
कुछ दिनों बाद घोषणा हुई कि सूरत में जो महामारी थी
वह वास्तव में महामारी नहीं थी ।[103]

इसी क्रम में 'जितना दो आँखें' कविता देखने लायक हैं जहाँ कवि जातिगत वर्चस्व की आधारशिला को ध्वस्त करता हुआ सामाजिक समानता एवं सौहार्द का पक्ष लेता जान पड़ता है _

किसी दिन तो कभी तो
बढ़ी होंगी जड़ें अन्दर
और चलकर पिया होगा
एक ही जल–कुण्ड से
जल
कहीं सुदूर पृथ्वी में जब हमारे रोम अन्तिम
मिले होंगें
तब अचानक हिली होंगी फुनगियाँ तक ।[104]

उपर्युक्त कविता के हवाले से हम देख सकते हैं कि अरुण कमल सामाजिक समानता की बात करते हैं । वे पूछते हैं उन तमाम लोगों से जो जातिगत विद्वेष की आग

---

[103] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ट–५९
[104] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–२६

धधकाते हैं कि आखिर एक दलित और सवर्ण में क्या फर्क है? दोनों ने ही तो एक ही धरती से रस ग्रहण किया है, फिर दोनों में इतनी असमानता, इतनी दूरी क्यों? अरुण कमल सामाजिक वर्जनाओं से किस तरह दो–चार होते हैं, इसका जीता –जागता उदाहरण यह है कि वे हिन्दी दलित साहित्य के प्रति न तो बौद्धिक चुप्पी लगाते हैं और न ही उसे उपेक्षापूर्वक देखते हैं । दलित साहित्य को वे मुक्तिगामी साहित्य मानते हैं । यही वजह है कि वे कहते हैं कि–"यह विचार कि प्लेटो या अरस्तू पुरुष थे और दास समाज की देन थे इसलिए उनको खारिज़ कर देना उतना ही खतरनाक है जितना यह विचार कि केवल वे ही श्रेष्ठ हैं । जो हाशिया है वह भी केन्द्र बनेगा और केन्द्र फिर से हाशिया लेकिन यह अनवरत प्रक्रिया है । जरूरत इस बात की है कि सदियों से वंचितों को वह सब कुछ पाने दिया जाए जिसके वे हकदार थे और हैं । ताकि हर तरह का विभेद मिट सके । वे खुद चुन लेंगे ।[105] अरुण कमल जीवनधर्मी कवि हैं । उनकी कविताओं में आए संघर्षशील कवि पर टिप्पणी करते हुए परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं कि –"मनुष्यता के लिए जिन ताकतों ने खतरा पैदा किया है उसके बारे में लिखते हुए अरुणकमल जो साहस दिखाते हैं वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । जो आदमी से–आदमी के सुख–दु:ख और संघर्ष से लगाव नहीं महसूस करते, जो सच्ची जीवनासक्ति से वंचित हैं, जिनकी दुनिया कला और हुनर तक सीमित है, जो जीवन को अनुभव–प्रत्यक्ष से नहीं, अवधारणाओं में जानते हैं, वे कोमलरागात्मकता और कठोर प्रतिरोध के इस संतुलित जीवन–विवेक और काव्यविवेक को कभी भी उस अर्थ में प्रमाणित नहीं कर पाएँगे जो अरुण कमल की कवि–दृष्टि और प्रतिबद्ध विचारधारा का अभिन्न अंग है ।"[106] अरुण कमल की कविताएँ प्रेरित करती हैं कि जनसामान्य के दुख को देखकर पाठक न केवल उनसे सम्पृक्ति रखे बल्कि उनके संघर्षों में अपनी खुद की हिस्सेदारी भी निभाए ।

बतौर कवि अरुण कमल ने हिन्दी कविता को समृद्ध किया है । उनकी कविता में सामाजिक चेतना है । अरुण कमल अभी सृजनरत हैं । आशा है कि एक जागरूक कवि

---

[105] प्रधान सम्पादक–प्रो.कमला प्रसाद, 'वसुधा–६२', (सितम्बर२००४)

[106] डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव, 'समकालीन कविता का यथार्थ', पृष्ठ–२२१

की तरह वे आगे भी अपनी कविताओं की बदौलत सामाजिक वर्जनाओं से लोहा लेते रहेंगे ।

(ख) सांस्कृतिक प्रतिरोध

अरुण कमल की अधिकाँश कविताएँ 'मॉडर्निटी' को मुँह चिढ़ाती हैं । जो अपने रचाव में जातीय हैं, जिनकी अर्थान्विति तक में भारतीय परिवेश के प्रति गहन तदाकारिता दिखाई पड़ती है । हम जानते हैं कि उदारीकरण के परिणामस्वरुप शहर बनते चले गए और गाँव उजड़ते चले गए । इन कविताओं के माध्यम से हम देख सकते हैं कि किस तरह परिवर्तन तेजी से चल रहा है और शहरीकरण के बीच गाँव की पहचान तक गुम होती नज़र आ रही है । ये कविताएँ शहरी संस्कृति के बरक्स, वैश्विक बाजार के बरक्स, आधुनिकता की अजनबीकृत संस्कृति के बरक्स एक समानान्तर प्रतिरोध खड़ा करती हैं । इन कविताओं में आए ग्रामीण समाज को देखकर श्रीराम त्रिपाठी कहते हैं कि "अरुण कमल का मन लोकमानस के ज़्यादा नज़दीक है । लोक की यह विशेषता होती है कि वह पहले सहेजने लायक चीज़ों को बचाता है, उसके बाद संघर्ष करते हुए नए का सृजन करता है ।"[107]

निश्चित तौर पर अरुण कमल की कविताएँ गाँव आधारित कविताएँ हैं, जिनमें भारतीय गाँव स्पष्ट नज़र आता है । लेकिन कविता में गाँव के आने से अरुण कमल लोक चेतना के कवि नहीं हो जाते, क्योंकि अरुण कमल को लोक चेतना का कवि कहने से उनके कृतित्व का समग्र मूल्यांकन नहीं हो सकता । लोक तत्व उनकी कविता में ज़रूर आया है, मगर वह तमाम प्रवृत्तियों में एक ख़ास तरह की प्रवृत्ति मात्र है । वे लोक तत्व को बतौर साधन प्रयोग में लाते हैं । असल में उनका साध्य है प्रतिरोध दर्ज करना । वे महानगरीय संत्रास के बरक्स प्रतिरोधी रूप में गँवई संस्कृति को स्थापित करते हैं । उनको लोक चेतना का कवि न कहकर जीवन मात्र का कवि कहना ज्यादा उचित जान पड़ता है क्योंकि वे जीवन की हर तरह से रक्षा करते हैं । उनकी कविता में पूरा जीवन उतरता है और वे जीवन के यथार्थ से टकराते हैं । शोषक प्रवृत्तिओं से डटकर लोहा लेते हैं । उनकी कविता में आया लोकतत्व बाकायदा प्रतिरोधी अंदाज लिए हुए है । यह कहना ज्यादा समीचीन होगा कि अरुण कमल की कविता में गाँव की अभिव्यक्ति लोकरंजन के प्रयोजन से नहीं बल्कि सांस्कृतिक प्रतिरोध की वजह से है ।

---

[107]श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२३७

गाँव का आना न तो इत्तेफाक है और न ही गाँव को दिखाने मात्र की इच्छा से कवि गाँव को जबरन अपनी कविता में उतारता है । अरुण कमल के यहाँ गाँव आहिस्ता–आहिस्ता आता है । गाँव के साथ ही आती है लोकसंस्कृति जो शहरीकरण के बीच डँट कर खड़ी हुई है । यही नहीं गँवई संस्कृति जोर से धमक मचाती है जिससे उसके होने की भी थाह ली जाए । इस बेहद भागती दुनिया में प्रत्येक वस्तु शहर केन्द्रित हो गई है। मसला किसी वस्तु का शहर भर होने से नहीं है मसला है शहरीकरण के साथ बढ़ती संवेदनहीनता का । बाजार का दबाव हर एक वस्तु पर पड़ रहा है । वैश्विकरण के इस दौर में जहाँ पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव में तब्दील होगया है, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि आखिर गाँव को कैसे रेखांकित किया जाएगा । इस बेहद भागती दुनिया में मनुष्य की अस्मिता ही खो गई सी मालूम पड़ती है । 'बात' शीर्षक कविता में अरुण कमल दिखाते हैं कि इस तथाकथित उत्तर आधुनिक युग में मनुष्य जहाँ एक ओर कुंठित हुआ है, वहीं उसकी संवेदना दिन पर दिन क्षरित होती जा रही है । पहले मनुष्य तहजीब का ख़याल रखता था मगर आज उसे किसी चीज़ की परवाह नहीं है । आज वह भौतिकगामी और पहले से कहीं अधिक महत्वाकांक्षी हो चला है । अपनी उम्र को छिपाने के लिए वह बाल रंगता है, सस्ती किताबों और अश्लील उपन्यासों में रुचि लेता है । मर्यादा, नैतिकता सबको ताक पर रख कर आज मनुष्य बेहया होता जा रहा है । अरुण कमल अपनी कविता में मनुष्य के नकलीपन का विरोध करते हैं । वे दिखाते हैं कि भोगलिप्सा ही सब कुछ नहीं है । मनुष्य को इस नकली खोह से जल्द ही बाहर निकलना चाहिए–

अब मुझे क्या हो गया है
बच्चों के सामने कुल्फी चाटते चलता हूं बीच बाजार
कमीज की बांह बार बार झाड़ता केश रंगता ब्लू फिल्में देखता
जेब में कंघी हाथ में रूमाल ।[108]

एक कवि की जानिब अरुण कमल उपभोक्तावादी संस्कृति से लगातार जूझते हैं, उनके काव्य में गाँव का आना शहरीकरण के प्रति कवि का प्रतिरोध है जिसे चलताऊ ढंग से नहीं लिया जा सकता । शहरी अभिजात्यवर्ग का सशक्त विरोध करते हुए वे

---

[108] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–२५

ग्रामीण सहजता को कविता में स्थापित करते हैं । अपनी कविताओं की मदद से आज की हाईटेक सोसाइटी के बीच गाँव के भोलेपन को इसलिए चरितार्थ करते हैं क्योंकि तमाम तरह की अराजकताओं के विरोध की असीम सँभावना उन्हें खेतिहर मजदूरों एवं किसानों के अन्दर दीखती है । सर्वहारा वर्ग ही जनान्दोलनों का नेतृत्व कर सकता है । जनान्दोलनों की मशाल को धधकाने की जिम्मेवारी इसी वर्ग पर है । राजेश जोशी भी मानते हैं कि "ऐतिहासिक जानकारी और वर्तमान स्थिति दोनों से ही यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन की किसी भी कार्रवाई में हरावल दस्ता इस देश का किसान वर्ग ही बन सकता है और परिवर्तन का उत्स ग्रामीण अंचलों से ही सम्भव है, इसीलिए विद्रोह की समकालीन कविता की सही ज़मीन या शुरुआत भी वहीं से हो सकती है।"[109] अरुण कमल अपनी कविताओं के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतिरोध दर्ज करते हैं । वे जानते हैं कि जिस संस्कृति के बीच हम रह रहे हैं, यह भोगवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति है जिसके बीच मनुष्य भी महज भोग की वस्तु बनकर रह गया है । आज प्रत्येक वस्तु उपभोक्तावाद के दायरे में है । "उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रत्येक वस्तु उपभोग की वस्तु बन जाती है । स्त्री स्त्री नहीं रहती, वह उपभोग की वस्तु बन जाती है।"[110] जो थोड़ी बहुत सांस्कृतिक विरासत बची हुई है, वह भारतीय गाँवों में है जहाँ मनुष्य इतना यंत्रवत, इतना जड़ नहीं हुआ है जितना कि शहरों में । वे शहरी भोगलिप्सा से भरी संस्कृति से दूर गँवई संस्कृति को सिरजते हैं ताकि इसकी सहायता से यह दिखाया जा सके कि वस्तु स्थिति वह नहीं होनी चाहिए जो हमें दिखाई जा रही है, बल्कि ग्रामीण संस्कृति में जो अभी आमआदमी के प्रति लगाव, अपनत्व है वही जीवन जीने का एक आदर्श हो सकता है । 'यातना'शीर्षक कविता आज की उपभोक्तामूलक संस्कृति से उपजे 'एलिनेशन' को दिखाती है, इस कविता के माध्यम से कवि बताना चाहता है कि समय के साथ किसी को यातना देने का तरीका भी बदलता है । कवि का मानना है कि अगर किसी को यातना देनी हो तो उसे सब कुछ दो मगर सामूहिकता से काट कर । सामूहिकता से कटे व्यक्ति का अकेलापन किसी यातना से कम नहीं है–

बहुत ही शालीन ढँग से

---

[109] राजेश जोशी, 'कवि की नोटबुक', पृष्ठ–१७१

[110] रामशरण जोशी, 'समकालीन जनमत', (१–१५ अगस्त१९९५)

किसी को यातना देनी हो
तो उसे खाने को सब कुछ दो
कपड़ा दो तेल दो साबुन दो
एक-एक चीज़ दो
और काट दो दुनिया से
अकेला बंद कर दो बहुत बड़े मकान में
बंद कर दो अकेला
और धीरे-धीरे वह नष्ट हो जाएगा ।[111]

उपर्युक्त कविता के हवाले से अरुण कमल बताते हैं कि जहाँ कभी मेला लगा करता था आज वहाँ अगर कोई गिलहरी भी बैठे तो तट भसक जाएगा । इस कविता में कवि ने गिलहरी के हवाले ग्रामीण संस्कृति की बात करनी चाही है जिसकी आज की अपसंस्कृति के बीच हासमय स्थिति है । कवि की चिन्ता है कि कैसे मनुष्य को उसके समाज से जोड़ा जाए जिससे आज वह कटता जा रहा है । 'वृत्तान्त' शीर्षक कविता में हम देख सकते हैं कि एक बूढ़ी माँ दिल्ली जाते एक व्यक्ति के हाथों अपने बेटे के लिए गुड़ की भेली और चूड़ा भेजती है । उसे बड़ा चाव रहता है कि उसका बेटा शहर में माँ के हाथ की भेली पाकर खुश होगा । लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि जिस आदमी के हाथों चूड़ा-गुड़ भेजा जाता है उसे अपने सामान की तो परवाह रहती है लेकिन उस झोले की तनिक भी परवाह नहीं रहती जो उस वृद्धा ने बतौर अमानत सौंपा था-

लेकिन एक तो छूट गया-
चलते समय गाँव की बूढ़ी ने दिया था
जूट का झोला
बोली थी दिल्ली पहुँचते जरूर भिजवा दीजिएगा ददन को
नया चूड़ा और गुड़ की भेली है ।[112]

---

[111] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-१७
[112] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ-४६

आज संघर्ष पहले की तरह सिर्फ सामंतवादी शक्तियों से नहीं है, आज के इस उत्तरआधुनिक समाज में केवल सत्ता ही नहीं है जो जुल्म ढा रही है । "अब पावर सिर्फ राजनीतिक सत्ता या उसके सामाजिक निकायों तक सीमित नहीं रह गई बल्कि वह बाजार, सामाजिक वर्ग, प्रभुत्व, करिश्माई व्यक्तित्व, काबिलियत, ज्ञान, पैसे, नैतिक दबाव(धर्म का), संस्कृति के सामाजिक प्रभाव और संगठनों के महत्व जैसी चीजों में भी झलकने लगी ।"[113] आज के कवि को उस संस्कृति का विरोध करना है जिसके बीच वह पिस रहा है । आज का कवि आधुनिकता के लुब्बे–लुबाब से बचता हुआ गाँव की मिट्टी के बीच रच–बस जाना चाहता है । उसे तोते का जुठारा हुआ अमरूद चाहिए, गिलहरी द्वारा काटा हुआ काला जामुन चाहिए । वह बहुत ऐश्वर्य नहीं चाहता, उसे तो बस गाँव की रसभरी ईख और गाय की छीमियों का रस चाहिए–

मुझे छप्पन व्यंजन नहीं
बस एक फल दो
सूर्य का लाल फल
अंधकार का काला फल
जिसे बस एक बार काटूँ
और अमर हो जाऊँ
वही अमरफल![114]

अरुण कमल का कवि मन खेत में लहलहाते सरसों के पौधे को देख कर उसकी सुगंध को नथुने तक में भरना चाहता है । 'हक' नामक कविता में कवि सरसों की सुगन्ध पर अपना हक भी चाहता है । आज की यांत्रिक दुनिया में एक प्रकृति ही तो है जो भेदभाव नहीं करती, जो अपनी सुषमा से सबको मन्त्रमुग्ध करती है । कवि स्वगत कथन पूछता है कि–

क्या थोड़ा भी हक नहीं मेरा इस खेत पर?
मुझको मिल गई है सारी सुगन्ध
दाना ले जाए भले खेत का मालिक....

---

[113] सुन्दरचन्द ठाकुर, 'समयान्तर पत्रिका', फरवरी २००८, पृष्ठ–१५
[114] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–३६

थोड़ा भी हक नहीं?[115]

अरुण कमल का कवि मन केवल प्रकृति के बीच बैठकर अकर्मण्य नहीं बना रहता, उसे जहाँ भी लगता है कि आज की यांत्रिक संस्कृति के बीच व्यक्ति असमर्थ, कातर है वह तत्क्षण उस व्यक्ति से अपना नाता जोड़कर अपसंस्कृति से लड़ने हेतु लामबंद होता है । छायावादी कवियों की तरह प्रकृति की गोद में बैठा कवि रात में तारे नहीं गिनता । भूख से लड़ने वालों की पीड़ा को भाँपता कवि मन इस भोगवादी समय का प्रतिकार करता है । 'तुम चुप क्यों हो?' शीर्षक कविता में कवि ने सवाल उठाया है कि ग़र आज की भोगवादी संस्कृति सब कुछ मटियामेट करती हुई आगे बढ़ेगी तो भी क्या तुम चुप रहोगे? या उसे जवाब देने का साहस इकट्ठा कर पाओगे । कवि आज की स्थिति के बारे में सजग होकर टिप्पणी करता है कि_

कैसा समय कि छुट्टा साँड़
गौवों की नाँद में सींग मार रहा है
और कोई बोल नहीं सकता
कैसा समय कि खून के छींटों से भरा सफेद घोड़ा
गाँवों को रौंदता जा रहा है
और कोई रोक नहीं सकता ।[116]

अरुण कमल की कविता में आज के समय की स्पष्ट आहट सुनाई पड़ती है । कविता एक तरफ राजनीतिक प्रतिरोध करती है, साथ ही सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध करती हुई आज के समय पर भी नोटिस जारी करती है । आज की वैश्विक संस्कृति ज़हर खुरानी से पूरी सभ्यता को मिटाने पर तुली हुई है । कोई किसी को पहचानता तक नहीं, मानवीय रिश्तों में दिन–प्रतिदिन खटास बढ़ रही है । अरुण कमल आज की शोषण मूलक व्यवस्था को समझते हैं । आज संस्कृति के स्तर पर जो छीना–झपटी का माहौल है, इसमें इनकी कविताएँ सार्थक हस्तक्षेप करती हैं । 'यात्रा' कविता बताती है कि किस तरह लोग पलायन कर रहे हैं एक जगह से दूसरी जगह, किस तरह रोजी–रोटी के जुगाड़ में लोगों से उनका देश, उनकी मिट्टी छीजती जा रही है । लोग चाहते हैं कि

---

[115] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–४०
[116] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६०

जहाँ पैदा हुए वहीं रच–बस जाएँ, मगर आर्थिक तँगी उन्हें मजबूर करती है कि वे अपने गाँव–गिराँव से दूर रहें । इस कविता के सहारे अरुण कमल भौतिकपरक व्यवस्था का विरोध करते हैं, और आम–आदमी की लोक संस्कृति के प्रति संवेदना ज्ञापित करते हैं–

कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन उगे
मिट्टी बन जाय वहीं,
पर दोमट नहीं तपता हुआ रेत ही है घर
तरबूज का,
जहाँ निभे जिन्दगी वही घर वही गाँव ।[117]

अरुण कमल इस अंधड़ भरी भीड़ का विरोध करते हैं, जहाँ आदमी की कोई कद्र नहीं बल्कि पैसे की कद्र होती है । आज की इस भौतिकता भरी संस्कृति पर राकेश भारतीय की टिप्पणी ठीक बैठती है– "आज के समय में ये करोड़ों वंचित लोग आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक रूप से लगातार हाशिए पर धकेले जा रहे हैं । नकली और प्रायोजित सूचना के महाविस्फोट के इस दौर में उनकी आवाज़ की कोई सुनवाई नहीं है क्योंकि बाजार उस आवाज़ में कोई व्यावसायिक संभावना नहीं देखता । एक तरफ ये वंचित लोग समाज के सम्पन्न तबके की आयातित सोच, नकली विमर्श, प्रायोजित सांस्कृतिक विचलन और व्यावसायिक स्वार्थों के निशाने पर बैठे हुए उनका मवाद सोखने के लिए अभिशप्त हैं तो दूसरी तरफ उनकी अपनी जीवनपद्धति, अपनी संस्कृति, अपने जीवनमूल्य लगातार उपहास और दोहन का शिकार बने हुए हैं ।"[118] अरुण कमल अपनी कविता 'ऐसा क्यों हो रहा है'के बहाने एक प्रश्न सभी से करते हैं कि सुविधाभोगी संस्कृति द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न का विरोध क्यों नहीं किया जाता–

सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत जा रही है
और लोग अपने–अपने ओटों पर खड़े हैं चुपचाप
ऐसा क्यों हो रहा है
बगल में एक आदमी का खून हो रहा है

---

[117] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–१३
[118] सम्पादक–प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, 'पश्यंती पत्रिका', (जनवरी–मार्च२००६), पृष्ठ–३०

और लोग अपने-अपने दरवाज़े बन्द कर सुन रहे हैं चुपचाप ।[119]

अरुण कमल अपनी कविता में आज की व्यवसायिक जकड़बंदी का विरोध करते हैं । वे जानते हैं कि आज की शोषक व्यवस्था न केवल लोगों से उनकी पहचान तक को झपट लेना चाहती है बल्कि उनकी भाषा, जीवन जीने के ढंग सभी को इजारेदारी में बदलने का, गाँवों को बड़े-बड़े मॉल में बदलने का कुचक्र भी रच रही है । यही वजह है कि आज की खाओ-पियो, अघाओ वाली संस्कृति से दूर वे गाँव की पारस्परिक लगाव और गझिन संवेदना वाली संस्कृति को तरजीह देते हैं । 'नए इलाके में' शीर्षक कविता में वे दिखाते हैं कि किस तरह गाँवों को उजाड़ कर एक नई सभ्यता को बनाने का कुचक्र रचा जा रहा है । दिन प्रतिदिन बदलाव जारी है और गाँव की पहचान खतरे में है, वे दिन प्रतिदिन घट रहे नएपन का विरोध करते हैं-

धोखा दे जाते हैं पुराने निशान
खोजता हूँ ताकता पीपल का पेड़
खोजता हूँ ढहा हुआ घर
और ज़मीन का खाली टुकड़ा जहाँ से बायें
मुड़ना था मुझे
फिर दो मकान बाद बिना रंग वाले लोहे के फाटक का
घर था इकमंजिला ।[120]

अरुण कमल जानते हैं कि इस शोषणमूलक संस्कृति में ग़र आदमी की कोई पूँजी है तो वह उसके खेत, उसके मैदानों की ढूह भरी मिट्टी है जहाँ उसने जन्म लिया है । भौतिकता के मद में चूर हर कोई ख़्वाहिश रखता है कि उसके पास बैंक-बैलेंस हो, बड़ी-बड़ी कोठी हो, दो-चार नौकर हों, लेकिन कवि इन सबकी दरकार नहीं करता, उसे तो वह मिट्टी बहुत प्यारी है जिसकी धूल-धक्कड़ में लोट-पोट कर वह बड़ा हुआ है । 'पूँजी' कविता बताती है कि असल पूँजी क्या है, जिससे आज हर कोई कटता जा रहा है -

---

[119] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-५९
[120] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ-१३

न पहाड़ों के गीत थे मेरे पास
न घाटियों दर्रों के,
न सागर नदियों के गीत थे
न नाविक मछुवारों के,
मैं तो मैदानों खेतों का रहनवार
थोड़े से बोल थे बगीचों बधारों के ।[121]

विश्व पटल पर पूँजी का खेल चल रहा है, हर चीज में पूँजी घुसी हुई है, इससे शायद ही किसी को गुरेज़ हो । ऐसे में पूँजी की पकड़ को कवि शिथिल करता है । उसकी पूँजी वह हो भी नहीं सकती जिसके द्वारा तमाम नकली काम चल रहे हैं असल पूँजी तो उसकी विरासत ही हो सकती है । विश्व भर में जो पूँजी का आतंक है उसके विषय में एकान्त श्रीवास्तव की मान्यता है कि–"विश्व अब गाँव हो गया है विश्वबन्धुत्व के नाम पर एक सत्ता के नीचे पूरे विश्व को उपनिवेश बना लेने का अब षड्यंत्र है । अब अस्त्र का काम वित्तीय पूँजी से लिया जा रहा है । बाजार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अब अस्त्र हैं । विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण दिलाकर विकासशील देशों पर दबाव डाला जा रहा है कि वे अपनी नीतियाँ बदलें और नीतियाँ बदली जा रही हैं।"[122] पूँजीवाद का दबाव गाँव पर भी पड़ रहा है, मजदूर और अधिक गरीब बनते जा रहे हैं, उनकी स्थिति सोचनीय होती जा रही है । अरुण कमल 'मातृभूमि' नामक कविता में मातृभूमि से निवेदन करते हैं कि वह अनाथ, बेसहारा लोगों के आँसुओं को पोछने का काम करे । आधुनिक संस्कृति में भले ही उनके लिए जगह न हो लेकिन मातृभूमि की निगाह में ज़रूर उनके लिए जगह हो, क्योंकि एक माँ ही होती है जो अपने सारे बच्चों का खयाल रखती है, उसके लिए कोई छोटा बड़ा नहीं होता । उसके लिए तो उसके सारे बच्चे बराबर हैं–

ये बच्चे कालाहांडी के
ये आन्ध्र के किसानों के बच्चे ये पलामू के पट्टन नरौदा पटिया के
ये यतीम ये अनाथ ये बँधुआ

---

[121] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–१५
[122] एकान्त श्रीवास्तव, 'कविता का आत्मपक्ष', पृष्ठ–३६

इनके माथे पर हाथ फेर दो माँ

इनके भींगे केश सँवार दो अपने श्यामल हाथों से–

तुम किसकी माँ हो मेरी मातृभूमि?[123]

उपर्युक्त कविता के अंत में कवि मातृभूमि से पूछ बैठता है कि तुम किसकी माँ हो? आज जब जर–ज़मीन हर जगह अमीरशाही है, गरीबों के लिए कहीं ठौर नहीं, ऐसे में कवि को मातृभूमि से ही पूछना पड़ रहा है कि क्या माँ के आंगन में इन अनाथ बच्चों के लिए जगह है या यहाँ भी पूँजीवादी संस्कृति हावी है ? इस कविता में जहाँ कवि उड़ीसा के गरीबों के पक्ष में खड़ा है, वहीं वह पूँजीकृत समाज पर व्यंग्य भी करता है, क्योंकि धन के प्रभाव ने व्यक्ति को उसकी मिट्टी से ही उखाड़ कर फेंक दिया है । आज जिस परिवेश में हम रह रहे हैं, इसमें एक आम नागरिक को यह पता है कि कौन सी लखटकिया कार उसे खरीदनी है, कहाँ की जमीन पर उसे अवैध अधिग्रहण करना है, लेकिन उसे यह बिल्कुल पता नहीं है कि पड़ोसी का बच्चा भूख से दम तोड़ रहा है । आखिर क्यों कर पता हो ? जिसमें हम सभी हैं, वह मशीनीकृत संस्कृति है, और हम सभी चाहते न चाहते हुए भी इसके अंग बनते जा रहे हैं । 'भूमण्डलीकरण और सम्प्रेषण का संकट' नामक अपने लेख में सच्चिदानन्द सिन्हा आधुनिक संस्कृति की टोह लेते हुए कहते हैं कि "आज के आधुनिक आदमी को संसार भर के मोटरगाड़ियों के माडलों, हवाई सेवाओं के किरायों और पर्यटनस्थल पर उपलब्ध होने वाले होटलों और सुविधाओं की जानकारी है । लेकिन उसके पड़ोस के झुग्गी में भूख और बीमारी से मरने वालों की कोई जानकारी नहीं । ये बेपनाह लोग उसके वैश्विक नक्शे से बाहर हैं ।"[124] वैश्विक नक्शे में भले ही इन अनाथों की टोह न ली जाए, लेकिन कवि अपनी कविता में तो इनकी पर्याप्त ख़बर लेता है । इसी क्रम में देखने योग्य है 'अपनी पीढ़ी के लिए' शीर्षक कविता, जिसमें कवि रेखाँकित करता है कि अग्रहण योग्य सारी चीजें ग्रहण करने के लिए आमआदमी अभिशप्त है;उसकी मजबूरी है कि वह अखाद्य का भी भक्षण करे, क्योंकि उसके सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है–

---

[123] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–४४

[124] सम्पादक–किशन कालजयी, 'संवेद–१५', (फरवरी२००७)पृष्ठ–२५०

वे सारे खीरे जिनमें तीतापन है हमारे लिए
वे सब केले जो जुड़वा हैं
वे आम जो बाहर से पके पर भीतर खट्टे हैं चूक
और तवे पर सिंकती पिछली रोटी परथन की
सब हमारे लिए ।[125]

एकान्त श्रीवास्तव कविता को जो जिम्मेदारी सौंपते हैं, उसे बहुत हद तक अरुण कमल की कविताएँ निभाती हैं । एकान्त का कहना है कि "कविता उस घर और गाँव को बचाने का निरन्तर प्रयत्न करती है, भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के इस दौर में जिनके उजड़ जाने का खतरा लगातार हमारे सिर पर मँडरा रहा है । हमारे घर और गाँव जो रोज थोड़ा-थोड़ा उजड़ते जाते हैं, कविता उनके फिर से बसने का स्वप्न देखती है।"[126] अरुण कमल अपनी कविताओं में उन गाँवों की देखभाल करते हैं जिनके विनष्ट होने का ज्यादा खतरा महसूस हो रहा है । जिन लोगों का कहीं कोई घर नहीं, उनके विषय में कवि सोच कर दुखी होता है, उसे लगता है कि जिनके घर-बार उदारीकरण की भेंट चढ़ गए, आखिर वे कहाँ जाएँ –

कहाँ जाएँगे वे लोग
जिनका कहीं कोई घर नहीं
कहीं कुछ भी स्थिर नहीं
जहाँ कहीं जल मिले थोड़ी-सी मिट्टी
उग जायें वहीं-
कहाँ जाएँगे वे लोग जिन्हें चाहिए पूरी पृथ्वी?[127]

अपने ही गाँव से दूर होते लोगों की चिन्ता को समझते- बूझते हुए विष्णुनागर ने भी कहा है कि-"मेरी चिन्ता इसी तरह की है । सूचना प्रौद्योगिकी का तो तेजी से विकास हो रहा है मगर क्यों ऐसी प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास नहीं हो सका है मसलन जो बिजली और पानी को गाँव-गाँव तक पहुँचाती, रोजगार के अवसरों को

---

[125] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ-४५
[126] एकान्त श्रीवास्तव, 'कविता का आत्मपक्ष', पृष्ठ-९५-९६
[127] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-७५

बढ़ाती? अगर ऐसी प्रौद्योगिकी भी वास्तव में तेजी से विकसित हुई है तो उसे सूचना प्रौद्योगिकी की तरह ही गाँव–गाँव तक ले जाने की बात क्यों नहीं हो रही है?और जो हो भी रही थी, वह खत्म होती सी क्यों हो चली है? और क्यों सूचना तकनालाजी ने तथाकथित रूप से पूरी दुनिया को एक गाँव बना दिया है, लेकिन जो वास्तविक गाँव हैं, उससे हमें और भी दूर कर दिया है?क्यों ऐसा है कि हमें भूख गरीबी और शोषण की बात अब उतनी परेशान नहीं करती, जितनी कि आज से दस साल पहले करती थी?"[128] बहरहाल किसी को गाँव की फिक्र हो या नहीं, लेकिन एक संवेदनशील कवि हमेशा अपने गाँव, अपनी मिट्टी के प्रति अपनापे से भरा होता है । इस अर्थ में अरुण कमल को अपने गाँव से लगाव है । अरुण कमल जानते हैं कि प्रगति की दौड़ में बेलगाम घोड़े की तरह भागने की जिद में देश विश्वबैंक के ऋण बोझ से लदा हुआ है । इस घोर अपसंस्कृति के युग में गाँव की तो बात छोड़िए, पूरा देश नीलामी की कगार पर है । कैसे देश को बिकने से रोका जाए इसकी चिन्ता कवि को आद्यंत रहती है–

चढ़ा है नीलाम पर देश
एक–एक चौखट किवाड़ पालना
चढ़ा है नीलाम पर
आ रहे हैं डाक बोलने अमरीकी फ्रांसीसी इतालवी
अंग्रेज व्यापारी
घर का फूटा हुआ दिन भी वे लादेंगे जहाज पर
आ रही है कब्र की मिट्टी झाड़ती ईस्ट इण्डिया कम्पनी
डलहौजी के घोड़ों की टाप है रोड पर
टाप कनपट्टी पर ।[129]

अरुण कमल सपना देखते हैं कि सब खुशी से रहें, एक दूसरे के सुख–दुख में शरीक हों । वे जानते हैं कि आज की वैश्विक दुनिया में कहने के लिए पूरा विश्व गाँव की शक्ल अख़्तियार कर रहा है, एक दूसरे के करीब आ रहा है । इतना ज़रूर है कि दुनिया छोटी हुई है, लेकिन लोगों के बीच दूरी घटी नहीं है, उसमें इजाफा ही हुआ है ।

---

[128] विष्णुनागर, 'कविता के साथ–साथ', पृष्ठ–१००
[129] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–७६

'छोटी दुनिया' शीर्षक कविता में वे दिखाते हैं कि दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि ग़र पड़ोसी अपने घर में कील ठोंके या फिर करवट ले या कुर्सी खिसकाए तो लगेगा जैसे ये सारी घटनाएँ कहीं और न घटकर आपके घर में घटित हो रही हैं, मगर साथ ही यह भी देखने लायक है कि पास कोई भूख से मर रहा है तो इसका आपको पता तक नहीं है । इस कविता के सहारे अरुण कमल आज की स्थिति को दिखाते हैं, साथ ही आज की जड़ता के खिलाफ प्रतिरोध भी करते हैं । उन्हें पूरा विश्वास है कि समाज का भला अकेले रहकर नहीं होने वाला, सामूहिकता में रहकर ही इंसान खुश रह सकता है –

इतनी छोटी हो गई है दुनिया एक नक्शे–भर
जब आप आराम से खाना खा रहे हैं
तो बिल्कुल पास में कोई भूख से दम तोड़ रहा है–
चैन नहीं है कभी, सुख नहीं है अकेले–अकेले
सबके साथ ही सुख है, सबके दुख में दुख ।[130]

अरुण कमल की कविताओं का बहुलांश आज की कृत्रिमता के विरोध को लेकर है। आज जो संस्कृति समाज में पहुँचाई जा रही है उसके पीछे एक खास तरह की सोच है, जिसकी बदौलत लोक संस्कृति को जबरन मिटाया जा रहा है । लोगों को लगता है कि हम तो आधुनिक हो रहे हैं, अप टू डेट हो रहे हैं । किसी को पता भी नहीं चलता और देखते ही देखते एक नकली संस्कृति, एक नकली समाज उन्हें हड़प सा जाता है और वे अपनी जड़ों से कट जाते हैं । बतौर एक कवि, अरुण कमल को अपनी जड़ों की चिन्ता है । उनकी कविताओं में खेत, खलिहान, मेंड़, बधार सब आते हैं मगर एंटी थिसिस के तौर पर, जहाँ कवि पूरी तरह रम जाता है । शहरीपने से दूर कवि शान्त गाँव को सिरजता है जो आज अवशेष बनकर रह गया है । अरुण कमल की ग्रामीण सम्पृक्ति को देखते हुए श्रीराम त्रिपाठी ने सही कहा है –"अरुण कमल को मिट्टी से बहुत अनुराग है, क्योंकि वह धरित्री है । जो धारण करने में सफल होता है, वही जीवन रचता है । इस मिट्टी की गंध उनके काव्य–जगत में सर्वत्र मौजूद है । 'एक रात घाट पर', 'उर्वर प्रदेश', 'अमरफल', 'छोटी दुनिया', आदि कविताओं में यह जीवन गंध

---

[130] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–८०

बनकर आयी है ।"[131] अरुण कमल स्थानीयता को रचते वक्त ग्रामीण श्रम से जी नहीं चुराते । वे जानते हैं कि शहरी संस्कृति में जिस तरह शारीरिक श्रम के प्रति उपेक्षाभाव है ऐसा ग्रामीण समाज में नहीं है । आज भी गाँवों के लोग कमर तक पानी में धान रोपते हैं । गर्मी हो, जाड़ा हो या फिर बरसात, अपनी मेहनत से बंजर धरती में फसलें उपजाते हैं । उनकी अधिकांश कविताएँ गँवई सौन्दर्य को दिखाती हैं । 'दाना' शीर्षक कविता में कवि ने एक ग्रामीण स्त्री का चित्र खींचा है जो बड़ी लगन से गेहूँ फटक रही है । गेहूँ फटकते वक्त जो उसके चेहरे पर असीम शांति का भाव है कवि उसे बड़ी सूक्ष्मता के साथ कविता में उतारता है –

वह स्त्री फटँक रही है गेहूँ
दोनों हाथ सूप को उठाते गिराते
हथेलियों की थाप थाप्प
और अन्न की झनकार
स्तनों का उठना गिरना लगातार–
घुटनों तक साड़ी समेटे वह स्त्री
जो खुद एक दाना है गेहूँ का–
धूर उड़ रही है केश उड़ रहे हैं
यह धूप यह हवा यह ठहरा आसमान
बस एक सुख है बस एक शांति
बस एक थाप एक झनकार ।[132]

भोक्तावादी संस्कृति में व्यक्ति को क्षणभर के लिए भी सन्तोष नहीं है । व्यक्तिगत जिन्दगी में श्रम का कोई दख़ल तक नहीं है । आज के मेट्रोपोलिटन शहरों में स्वच्छन्दता की लहर उफान पर है, पिज्जा–बर्गर संस्कृति में पले बढ़े युवाओं की अगर बात करें तो पाएँगे कि शारीरिक श्रम से वे पूरी तरह अनजान हैं । उनकी दुनिया कम्प्यूटर के इर्द–गिर्द शुरू होती है और कम्प्यूटर के बीच ही खत्म हो जाती है । उनमें श्रम के सौन्दर्य का अभाव सा दिखता है । प्रत्येक व्यक्ति थका–हारा और भीड़ से

---

[131] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२२६
[132] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–८२

परेशान है । हर एक के जीवन में निराशा घर करती जा रही है । ऐसे में अरुण कमल की 'दाना' शीर्षक कविता शहरी संस्कृति का प्रतिरोध करती हुई उसके समान्तर गँवई सँस्कृति को रचती है, जहाँ थोड़े में ही सन्तोष का भाव है, जहाँ अशान्ति नहीं बल्कि जीवन के प्रति गहरा लगाव है । श्रम के प्रति लगाव को दिखाने वाली ऐसी ही एक कविता 'सखि' है, जिसमें कवि दूर पनघट से जलभर कर लाती हुई ग्रामीण स्त्रियों को दिखाता है । 'सखि' नामक कविता गाँव की पनिहारिनों के सहज संवाद, हास-परिहास को लेकर है । शहरी तड़क-भड़क से दूर यहाँ कविता बहुत स्थानीय अंदाज लेकर आती है । आकार में बहुत छोटी होने के बावजूद कविता पनघट का एक छोर भर नहीं दिखाती । कविता शुरू होती है पनिहारिनों के जलभराव से, लेकिन खत्म होते-होते न दिखने वाला गाँव भी प्रतिबिम्बित सा हो आता है । असल में यही है कवि का अंदाज जो जीवन की समग्रता को, उसकी पूरी बानगी में उतार सा देता है –

माथे पर जल भरा गगरा लिए
ठमक गई अचानक वह युवती
मुश्किल से गर्दन जरा-सा घुमायी
दायाँ तलवा पीछे उठाया
और सखी ने झुककर
खींचा रेंगनी काँट
और चल दीं फिर दोनों सखियाँ
माथे पर जल लिये ।[33]

अरुण कमल की कविताओं के स्थानीय टोन पर कमला प्रसाद की टिप्पणी सटीक बैठती है । उनका मानना है कि-"अरुण कमल की कविताओं ने अब तक कविता के प्रति विश्वास जगाया है । महानगरों के वर्चस्व को तोड़ा है । देशज को व्यापक देश-काल से जोड़ा है । विडम्बना और विद्रूपता से पार जाकर व्यापक जीवन-चरित्र की छानबीन की है, भाषा की बहुआयामी अर्थ छवियों को समकालीन रचनात्मक आधार

[33] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-४१

दिया है । समकालीनता को सीमित अर्थों से उबारा है, बड़बोलेपन से बचाकर कविता को उसकी परम्परा के अनुरूप वाग्धारा की तरह सम्भव किया है ।"[134]

आज सड़कों, गलियों को यातायात के संसाधनों से जोड़ने का छलावा किया जा रहा है । सुविधाओं के नाम पर गाँव की संस्कृति को छिन्न-भिन्न किया जा रहा है । सुन्दरीकरण के बहाने नयी संस्कृति को बसाने की साज़िश जारी है । अरुण कमल इन सारी घटनाओं से बख़ूबी परिचित हैं । 'उल्टा जमाना' शीर्षक कविता में वे दिखाते हैं कि किस तरह एक सोची समझी नीति के तहत गाँवों को उजाड़ा जा रहा है । इस शोषक नीति का प्रतिकार करते हुए वे बापस्ता गाँव के लोगों को आगाह करते हैं ताकि वे इस सांस्कृतिक षड्यंत्र को समझें और गाँवों के ख़िलाफ़ चली जा रही कुचाल का जवाब दे सकें –

तुम्हारे गाँव तक यह सरकार जो दो हफ्ते में
पकी सड़क बनवा रही है
खुश मत होवो कि इस पर चलेंगी गाड़ियाँ
और तुम घण्टे आध घण्टे में शहर पहुँच जाओगे
और खाने के वक्त तक
वापस घर लौट आओगे
यह भी सोचो कि इसी से होकर
मिनट भर में पहुँचेगी सरकारी फौज
और तुम्हारा गाँव राख बन जाएगा ।[135]

आज जिस तरह खाद, कीटनाशक दवाईयों, उन्नत किस्म के बीजों का दाम बढ़ रहा है, ऐसे में बड़ी जोत के किसान भी मजूर में तब्दील हो रहे हैं । यही नहीं, आर्थिक तँगी से परेशान होकर किसानों का एक बड़ा कुनबा आत्महत्या जैसे जघन्य कृत्य को अंजाम दे रहा है । एक जागरूक कवि होने के नाते अरुण कमल सारी घटनाओं पर नज़र रखते हैं । विकास के नाम पर, प्रगति के नाम पर सरकार किस तरह लोगों के जज़्बातों के साथ खेलती है, इसका उल्लेख करते हैं । भले ही गाँवों को मिटाने की

---

[134]सम्पादक-किशन कालजयी, 'संवेद पत्रिका', अगस्त २००७, पृष्ठ-१५
[135] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ-६७

साज़िश में सियासतदाँ लोग लगे हों, कवि अपनी कविता में गाँव को भरसक बचाने का प्रयत्न करता है । वह कभी नहीं चाहता है कि उसकी मातृभूमि से उसे दूर रखा जाए । अरुण कमल किसानी सभ्यता को महसूसते हैं और आज की भोगवादी संस्कृति के समानान्तर उसका रचाव करते हैं । अब तक के उनके चारों काव्यसंग्रहों में प्रकृति के प्रति, गाँव के प्रति गहन एकाकारिता मिलती रही है । उम्मीद की जाती है कि वे आगे भी भूमण्डलीकरण और उत्तरआधुनिकता के खूनी पंजों से गाँव की सुरक्षा करते रहेंगे । उनकी सृजनात्मकता के प्रति उम्मीद जाहिर करते हुए कवि सोमदत्त ने सही कहा है कि–"हमें उम्मीद है कि बरगद की टूहों सी हटकती उनकी कविता कंछा फेंकते हुए जीवन और प्रकृति को आगे भी इसी सरलता और संवेदनशीलता से बाँधेगी, साथ ही वह उस जूझन और ताप को तथा उनमें जड़ जमाए उन प्रवृत्तियों को भी बेलौसी से उजागर करेगी, जो उस सब के खिलाफ है जिसके पक्ष में उनकी कविता खड़ी है ।"[136]

[136] सम्पादन–कर्मेन्दु शिशिर, कोठार से बीज, पृष्ठ–९३

(ग) राजनैतिक प्रतिरोध

पत्थर की नाभि में अभी भी कहीं
जिन्दा है हरा रंग –
मुझे उम्मीद है फिर भी..

अरुण कमल अपनी कविताओं में सत्ता की पोल खोलते चलते हैं । सत्ता जनवादी संघर्षों पर धावा बोलती है, जन संघर्षों को कुचलने का कुचक्र रचती है, ऐसे में उसका जनविरोधी तेवर साफ–साफ दिखाई पड़ता है । बतौर कवि अरुण कमल सत्ता के दोमुँहेपन को उघाड़ कर रख देते हैं । आखिर कवि, जो है उससे बेहतर की दरकार करता है, अपने समय की अनुगूँज को पकड़ने का प्रयास करता है । अपनी कवि दृष्टि से वह उन तमाम शोषक प्रवृत्तियों की शिनाख़्त करता है जो मानवता के विपक्ष में खड़ी हैं । सत्ता सबसे आँख–मिचौली खेल सकती है, अपनी शक्ति का आतंक दिखाकर गलत को सही और सही को गलत सिद्ध भी कर सकती है, लेकिन अपनी रचनात्मकता के प्रति प्रतिबद्ध कवि के सामने उसकी एक भी नहीं चलती । कवि राजनीतिक पद और सम्मान का लोभी नहीं होता जो सुरक्षा–वाल्व की भूमिका निभाए, सत्ता के गलत–सही पर मौन भंगिमाएँ अख़्तियार करे । कवि तो कवि होता है, मानवता का रक्षक होता है, भला उसे कैसे सत्ता द्वारा हथियाया जा सकता है । वह तो जीवन के हर मोर्चे पर सत्ता से जमकर लोहा लेता है । अरुण कमल के कवि व्यक्तित्व ने देखा कि कैसे सत्ता नक्सलवादी आंदोलन को कुचलती है, देशभक्तों को देशद्रोही साबित करती है; जिन्होंने देश, समाज के लिए प्राणाहुति दे डाली उनके संघर्षों से मुँह मोड़ती है । अपनी कविताओं में उन्होंने सत्ता की कलई खोली है । नामवर सिंह ने एक जागरूक कवि के कवि कर्म पर जो टिप्पणी की है वह बहुत हद तक अरुण कमल पर सटीक बैठती है । उनका मानना है कि–"जागरूक कवि अपने कवि कर्म के दौरान सतर्कता के साथ इस राजनीतिक संदर्भ को परिभाषित करते चलते हैं और इस प्रकार सीधे–सीधे राजनीतिक विषयों पर कविता न लिखते हुए भी अपनी प्रत्येक रचना को एक निश्चित राजनीतिक अर्थ देते हैं । महत्वपूर्ण है राजनीतिक संदर्भ का गहरा यथार्थबोध । ज़रूरी नहीं कि कवि इस राजनीतिक संदर्भ के बारे में लिखे ही–क्योंकि संदर्भ तो कविता में प्रायः व्यंग्य होता

है, लेकिन इस संदर्भ को व्यंजित करने के लिए उसका वास्तविकबोध ज़रूरी है । इस संदर्भबोध के बिना अराजनीतिक तो क्या, राजनीतिक कविता भी अर्थ–शून्य है ।"[137]

अरुण कमल की कविताएँ राजनीति से मुँह नहीं मोड़तीं, अपितु राजनीतिक कुटिलताओं के ख़िलाफ़ सार्थक हस्तक्षेप करती हैं । सूर्य–ग्रहण नाम से अरुण कमल ने तीन कविताएँ लिखीं हैं और तीनों में क्रमश: दिखाया है कि चाहे सत्ता कितना ही प्रयास कर कि वह जनसंघर्षों को छिपा लेगी किन्तु उसके बूते का नहीं है कि वह उन्हें छिपा सके । आखिर सूर्य, सूर्य ही होता है वह ग्रहण से बाहर निकलेगा ही । उसके प्रकाश को ढँक पाना इतना सहज नहीं है । सूर्य–ग्रहण:१ कविता में वे दिखाते हैं कि छिटपुट जनसंघर्षों को अंजाम देने से बेहतर है कि एक बड़ा जनसंघर्ष किया जाए ताकि सत्ता उसे दमित न कर सके । इस कविता में वे दिखाते हैं कि जब सच को झूठ मान लेने वालों का बाहुल्य हो, ऐसे में कुछेक तो ज़रूर होंगे जो हौंसलापूर्वक सच का सामना करेंगे । इन्ही लोगों में ही कवि की आस्था है जो सबकुछ दाँव पर लगाकर भी जन–मुक्ति में हिस्सेदारी निभाएँगे–

सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा खड़े हों आमने–सामने
कुछ सिरफिरे तो होंगे ही जो आँख बेचकर भी
तमाशा देखें–
ढेर सारे छोटे दृश्यों को देखने से अच्छा है
बस एक बार देखना सौन्दर्य का विपुल पुंज ।[138]

सूर्य–ग्रहण:१ कविता में जहाँ कवि एक बड़े संघर्ष की कामना करता है, वहीं सूर्य–ग्रहण:२ कविता में वह देखता है कि किस तरह सत्ता जनसैलाबों को कुचलती है, परन्तु पूरे संघर्ष को कुचल नहीं पाती । दमन के बावजूद जनसंघर्ष आगे बढ़ता है, एक समय ऐसा भी आता है जब आशा की एक भी किरण नज़र नहीं आती बावजूद इसके जनसंघर्ष नहीं हारता, अपने पूरे दम–खम के साथ वह सत्ता से लोहा लेता है । अपने तीव्र दमन के बाद भी सत्ता हाथ पर हाथ धरे रह जाती है –

धीरे–धीरे हो गया सर्वग्रास

---

[137] डॉ. नामवर सिंह, 'वाद–विवाद संवाद', पृष्ठ–११८
[138] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–२२

पर एक काला गोल पिण्ड
रहा दीप्त
विरजता पूरे आकाश में–
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही रहा सूर्य
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही होता है सूर्य![139]

अरुण कमल को पूरा विश्वास है कि एक जुट होकर ही सत्ता की जनविरोधी कार्रवाईयों को सार्थक जवाब दिया जा सकता है । वे जानते हैं कि सत्ता तमाम प्रशासनिक अधिकरणों का प्रयोग अपनी नीतियों को फैलाने में करती है । ऐसा भी समय आ सकता है जब जनान्दोलनों के लिए जेल जाना पड़े, कई–कई दिनों बिना कुछ खाए–पिए सत्याग्रह करना पड़े, कड़ी से कड़ी यातना भोगनी पड़े । ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे हार न मानने को प्रेरित करते हैं । वे जानते हैं कि एक जुट होकर ही अब तक के जनान्दोलन सफल होते आए हैं, इसलिए सांगठनिक तौर पर वे एक जुट होने की अपील करते हैं–

आज जिस गिलास में मैं पानी पी रहा हूँ
उसी में पिया था पानी इस मजदूर ने
दफादार चौकीदार ने
बिजली मजदूर स्कूल शिक्षक छात्र नौजवानों ने
एक ही नदी से पिया है जल सब ने
एक ही रास्ते चले सारे पाँव
जिसने भी रक्खा इस रास्ते पर पाँव
सागर से जा मिला ।[140]

'बोलना' कविता में अरुण कमल दिखाते हैं कि जो व्यक्ति बहुत दुख में होता है वह बहुत बोलता है । उसकी पीड़ा घनी होती है, जबकि जो बहुत आराम से मखमल के गलीचों पर बैठता है वह उतना ही कम बोलता है । यहाँ कवि ने शासक और शासित की भाषा में फर्क किया है । शासक नहीं के बराबर बोलता है, वह सिर्फ सिर हिलाता है।

---

[139] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–२३
[140] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–१४

उसके एक ईशारे पर कत्लेआम हो जाता है और वह चूँ तक नहीं करता । इस कविता में कवि ने राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है । राजनैतिक लोग हमेशा अपने भले की सोचते हैं, जनसामान्य की बात उठते ही विषय को गोलमोल कर जाते हैं । जबकि साधारण आदमी किसी का अनिष्ट नहीं चाहता, वह तो बस इतना चाहता है कि उसके दुख का समाधान हो–

जो सुखी सम्पन्न है
सन्तुष्ट है
वह कम बोलता है
काम की बात बोलता है
जो जितना सुखी है उतना ही कम बोलता है
जो जितना ताकतवर है उतना ही कम
वह लगभग नहीं बोलता है
हाथ से इशारा करता है
ताकता है
और चुप्प रहता है
जिसके चलते चल रहा है युद्ध कट रहे हैं लोग
उसने कभी किसी बन्दूक की घोड़ी नहीं दाबी ।[141]

अरुण कमल जन सामान्य की आवाज़ को भूलने की कोशिश नहीं करते, आम जन की पीड़ा से वे खुद बेचैन हो उठते हैं । वे जानते हैं कि जब रोपनी के दिन आएँगे और खेतों में धान की फसल रोपनी होगी तो उन्हीं मजदूरों की पूछ होगी जो आज नहीं हैं; जो अपने अधिकारों के लिए लड़ते–लड़ते पुलिसिया जुल्म के शिकार हुए हैं । उनकी चीत्कार भरी आवाज़ से किसी को ग़र वास्ता न हो तो न सही, लेकिन कवि को हमेशा लगता है जैसे कोई दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है । अपने संघर्षों को आगे बढ़ाने के लिए उत्प्रेरित कर रहा है । आ रही आवाज़ को कवि अनसुनी नहीं करता, बल्कि उससे प्रतिरोध का जज़्बा हासिल करता है –

---

[141] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ट–५३

वे मजदूर मारे गए
वे बच्चे मारे गए
बोकारो पथड्डा बड़हिया विश्रामपुर
कोई कहीं, कोई कहीं
वे मारे गए
लगता है कोई दरवाजे के पास है
किसी के पाँवों की थप-थप-
फिर वही आवाज पेचों-सी छेदती
अन्धकार के पटरे
फिर वही आवाज बार-बार.....[142]

उपर्युक्त कविता में कवि ने झारखण्ड के उन आदिवासियों के प्रति अपनी संपृक्ति व्यक्त की है जो अपने हक की लड़ाई में राजनैतिक दमन का शिकार हुए । जिनके मासूम बच्चों को जिन्दा जला दिया गया । सन 67 के नक्सलवादी आन्दोलन को जिस तरह सरकार जबरन कुचलती है उसके प्रति तीखा दंश पूरे आठवें दशक की हिन्दी कविता में देखने को मिलता है । हिन्दी पट्टी उस दमन को भूल नहीं पाती और सरकारी दमन के प्रति कड़ी प्रतिक्रिया जाहिर करती है । आठवें दशक की कविता के विषय में तीर्थेश्वर सिंह का मानना है कि " इस दशक की कविता की मुख्य शक्ति किसी पार्टी की प्रतिबद्धता में नहीं बल्कि औसत मनुष्य की रोजमर्रा के वास्तविक लगाव के रूप में मानी गई है । कविता यहाँ साधारण मनुष्य के साथ जुड़कर आज की व्यवस्था के प्रतिपक्ष में खड़ी है । अब कवि मसीहाई ढंग से कोई वक्तव्य नहीं देता और न अपने कथन में भाव स्फीतियों और अतिरंजनाओं में जाता है ।"[143] अरुण कमल आठवें दशक से सृजनरत हैं, उन्होंने अपनी कविता के हवाले से सरकारी तंत्र की सुविधापरस्ती को खोलकर रखा है । डायरी मार्च:78 नाम से उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं जो कवि की अनुभूतियों को दिखाती हैं । कवि अपनी डायरी में 'जाल' नाम से कविता लिखता है जिसमें वह दिखाता है कि मनुष्य की जिन्दगी बहुत सस्ती हो गई है । सरकार जनता पर गोली चलवाती है

---

[142] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ-२८-२९
[143] डा. तीर्थेश्वर सिंह, 'समकालीन हिन्दी कविता: एक सर्वेक्षण', पृष्ठ-११८

और फिर उसे भूल मानते हुए मुआवज़ा देकर मामले को रफा–दफा करती है । मरने वाले के घर की स्थिति क्या होगी, कोई नहीं सोचता । सरकार के लिए कोई मायने नहीं रखता कि किसी के घर का चिराग बुझ गया । उसे तो बस अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकनी हैं–

सरकारी रिपोर्ट थी....
गोली चलने से सिर्फ एक मौत,
वो भी हास्पिटल में
तीन दिन बाद,
पाँच हजार मुआवजा
भूल–चूक लेनी–देनी माफ!
कल रात मछुआरों ने डाला था जाल–
आज मछली नहीं, निकली तीन लाशें ।[144]

मार्च:78 की ही डायरी में कवि 'हाथ' नामक कविता उद्धृत करता है जिसका केन्द्रीय भाव है कि सरकार सारी दुर्घटनाओं के पीछे किसी –न –किसी संगठन का हाथ बताकर अपना पल्ला झाड़ लेती है । सरकार इतनी काहिल है कि अपनी गलतियों को भी नहीं स्वीकारती । समाज में व्याप्त अव्यवस्था की जिम्मेदारी खुद न लेकर उसे किसी– न– किसी के ऊपर मढ़ देती है । कारखाने में खुद गोली चलवाती है और फिर झूठी संवेदना जाहिर करते हुए उसका आरोप ट्रेड यूनियन पर लगाती है, जातिवादी दंगा खुद भड़काती है और मारे गए मुसहरों की हत्या का आरोप किसान सभाओं पर लगाती है; यही नहीं, विद्यार्थियों के हुजूम को खुद हंगामा मचाने के लिए प्रेरित करती है और फिर टुच्चेपन का परिचय देते हुए छात्र संगठनों पर ही प्रतिबंध लगाती है । इस कविता के हवाले से अरुण कमल दिखाते हैं कि सरकार को सिर्फ अपना वोट बैंक मजबूत करना है । उसके लिए अगर उसे सही–गलत का खेल खेलना पड़े तो वह पीछे नहीं हटती । लोगों की लाशों पर पैर रखकर वह सियासत का खेल खेलती है–

सरकार का कहना है

---

[144] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–४३

कारखाने में गोली चली, उसमें
ट्रेड यूनियनों का हाथ है,
मारे गए मुसहर, उसमें भी
किसान सभाओं का हाथ है,
विद्यार्थियों के हंगामों में
छात्र–संगठनों का हाथ है
और राज्य में जो गड़बड़ी है
सब में कम्युनिस्टों का हाथ है ।
हुजूर ने ठीक फरमाया
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है![145]

इस कविता के अंत में कवि ने सरकार की करतूतों पर व्यंग्य किया है । कवि को मालूम है कि सरकार संसद में नए–नए अध्यादेश पारित करवाती है और खुद सारे नियमों की अवहेलना करती है । अरुण कमल ने राजनीतिक मौकापरस्ती पर अनगिनत कविताएँ लिखी हैं तथा राजनीतिक सौदेबाजी के प्रति कड़ा प्रतिरोध जाहिर किया है । अरुण कमल की कविताओं की सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि ये कविताएँ आतिशबाजी में जलती फुलझड़ियों की तरह नहीं हैं, जिनको क्षण भर में बुझ जाना है । अपितु उनकी कविताएँ धीरे–धीरे पकती हैं और जब ये पूरी तरह पक जाती हैं तो धमाकेदार विस्फोट करती हैं और इससे पूरी सत्ता हिल उठती है । उनकी राजनीतिक प्रतिरोध ज़ाहिर करती हुई कविताओं के विषय में विधि शर्मा ने सही कहा है कि–" अरुण कमल अपने समसामयिक परिवेश के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं । अत: उनकी कविताओं में राजनीतिक टकराव की झलक मिलती है । किंतु उनमें किसी तरह की नारेबाजी नहीं है और न ही ये कविताएँ अखबारी हैं । ये तो अपने युग के सच को खोल कर सामने रख देने वाली कविताएँ हैं । उनकी कविताओं में व्यक्त राजनीति पूँजीवादी राजनीति के खिलाफ मेहनतकश जनता की राजनीति है ।"[146] अरुण कमल की 'उत्सव' कविता पढ़ते वक्त बाबा नागार्जुन की 'शासन की बंदूक' कविता याद आती है ।

---

[145] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–४३–४४

[146] विधि शर्मा, 'कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य', पृष्ठ–१४०

जिस तरह बाबा नागार्जुन ने कम शब्दों में पूरी राजनीतिक व्यवस्था को आड़े हाथों लिया, कमोबेश वैसे ही अरुण कमल राजनीति को परिभाषित करते हुए जान पड़ते हैं । केवल विषय के लिहाज़ से ही नहीं बल्कि भाषाई कलन को लेकर भी अरुण कमल नागार्जुन वाला पैटर्न अख्तियार करते हैं, लेकिन कविता कहीं भी कमजोर नहीं पड़ती । जिस तरह 'शासन की बंदूक' कविता अपने कथ्य और शिल्प के रचाव में बेजोड़ है ठीक वैसे ही 'उत्सव' कविता अपनी रचनात्मक अन्विति में उत्कृष्टतम है –

देखो हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान
जिनके मुँह में कौर माँस का उनको मगही पान ।[147]

इस कविता में नक्सलवादी आंदोलन की सुगबुगाहट भी मिलती है । कवि ने दिखाया है कि राजनीति बिकाऊ हो गई है, राजनीति में अपराधी तत्वों की संख्या बढ़ती जा रही है । जिन्हें देशभक्त कहलाना था वे नक्सल सेनानी हत्यारों की भेंट चढ़ रहे हैं और हत्यारे देशभक्त बने घूम रहे हैं । इस कविता में कवि बिना लाग– लपेट के हत्यारों की काहिली पर चोट करता है । उसे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि जिनके हाथ खून से रँगे पड़े हैं वे नैतिकता के झूठे लम्बरदार बने बैठे हैं । अरुण कमल अपनी कविताओं में कई जगह दिखाते हैं कि राजनीति की दुकान आजकल गुन्डों के बलबूते चल रही है । राजनेता आज न केवल 'सेक्स रैकेट्स' चला रहे हैं बल्कि लठैत भी पालते हैं, जिनके सहारे वे आए–दिन शक्ति प्रदर्शन करते हैं । इसी क्रम में उल्लेखनीय है 'मुठभेड़' कविता, जिसमें कवि ने दिखाया है कि मुख्यमंत्री किस तरह अपने पद का दुरुपयोग करता है, खुलेआम 'किडनैपर' से मिलने जाता है । 'किडनैपर' के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जाती और निर्दोष आमजनता को डरा– धमका कर उसके मन में भय की रेखा खींची जाती है –

और देखते देखते पूरी गली साफ
जैसे पानी दहाने के बाद संडास ।
जा चुका था सी.एम.किडनैपर
से मिलकर जो इस गली के अपने पुश्तैनी मकान में छिपा पड़ा

---

[147] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६२

था इन दिनों

एक टाँग तोड़ कर ।[148]

आज जिस तरह राजनीति में छल–प्रपंच बढ़ा है, ऐसे में सच्ची जनवादी कविता लिख पाना आसान काम नहीं है । आज के कवि को जटिलताओं के दलदल में पैर रखना है, अगर अनुभव में कमी और यथार्थ के प्रकटीकरण की सही क्षमता नहीं रही तो पैर को धँसने से कोई नहीं रोक सकता । कात्यायनी रचनात्मकता के जोखिम को उजागर करती हुई कहती हैं कि–" सच्ची वामपंथी या जनवादी कविता आज भी उतने ही जोखिम का काम है, जितना हमारे महान अग्रज कवियों ने उठाया । सत्तातंत्र पहले से अधिक असहिष्णु हुआ है, पर उसने अतीत से सबक लेकर अपनी समझदारी बढ़ाई है और छद्मों को पालने–पचाने–प्रोत्साहित करने की कला में महारत हासिल की है ।"[149] बतौर कवि अरुण कमल अपने समय के जोखिम को समझते हैं, और सत्तातंत्र की किमियागिरी को खोल कर रख देते हैं । अरुण कमल की राजनीतिक कविताओं के विषय में विधि शर्मा ने सही कहा है कि–" अरुण कमल की राजनीतिक कविताएँ जनता की चेतना को माँजने का काम करती हैं । यथार्थ की वैज्ञानिक एवं वस्तुगत समझ होने के कारण उनकी कविताओं में एक सुसंगत राजनीतिक धारा देखने को मिलती है । उनकी ऐसी कविताएँ पाठकों को यथार्थ का बेहतर ज्ञान देती हैं, उसके प्रति संवेदित और उत्तेजित करती हैं ।"[150]

'वक्त' कविता में कवि दिखाता है कि यूँ तो भारतीय संविधान में हरेक को स्वतंत्रता का अधिकार मिला है, लेकिन यह स्वतंत्रता कहने भर के लिए ही है । साधारण आदमी हँस– बोल भी नहीं सकता । उसे हर पल डर सताता है वह गर ज़रा भी हँसा तो मौका ताड़कर कोई उसका गला ही साफ कर जाएगा । गलियों के नुक्कड़ पर छुरा घुमाते बदमाश आती –जाती औरतों पर फिकरे कसते हैं, लेकिन कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता, क्योंकि उनके सिर पर बड़े–बड़े राजनीतिज्ञों का हाथ है –

ऐसा ही वक्त आ गया है

---

[148] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–३५

[149] कात्यायनी, 'कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त', पृष्ठ–८६

[150] विधि शर्मा, 'कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य', पृष्ठ–१२५

जब गुंडे बेला के फूलों की माला पहन

जै–जैकार करा रहे हैं

जब जहर–माहुर फल फूल रहे हैं

और फूलों की क्यारियों में जल नहीं.....[151]

आज का समय ही ऐसा है कि हर चीज़ में राजनीति है । आम–आदमी चाहता है कि वह राजनीति से दूर रहे, लेकिन राजनीति उसका पीछा नहीं छोड़ती । वह जहाँ जाता है उसे राजनीतिक लोग मिलते हैं । अगर किसी को हवा तक लग जाती है कि वह अराजनीतिक है और राजनीति से चिढ़ता है, तो ऐसे में उसका बच पाना आसान नहीं । उसकी जिन्दगी और मौत दोनों को लेकर राजनीति होती है–

राजनीति इतनी कड़ी चल रही है कि हँसना बोलना

हगना मूतना सबमें राजनीति है ।

लगा माथा घूम जाएगा ।

मार काट की बात हो रही थी ।

भाषण से साफ था कि दुश्मन के सारे लक्षण मुझमें विद्यमान हैं ।

लगा कोई मुझे ताक रहा है ।

किसी ने पहचाना और सैकड़ों गरदनें मेरी तरफ घूम गईं ।

मैं भागा ।

भागा ।[152]

आज देश की स्थिति यह है कि आमआदमी को उससे डर लगने लगा है जो देखने में बिल्कुल खतरनाक नहीं लगता । एक आम इंसान चैन से सो भी नहीं सकता । उसे हर पल चिन्ता सताती है कि कहीं कोई सोता जानकर उसे रात में लूट न ले–

जगे रहो

सोना नहीं है आज की रात

जलाए रहो लालटेन रात भर

चैत की भोर से ज्यादा खतरनाक कुछ भी नहीं

---

[151] अरुण कमल. 'सबूत', पृष्ठ–६८

[152] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–९०

खतरा उससे है जो बिल्कुल खतरनाक नहीं ।[153]

कवि बताता है कि आमआदमी भय, संशय की वजह से रात में सो नहीं पाता और देश का प्रधान षड्यंत्र में इतना व्यस्त होता है कि उसे फुर्सत ही नहीं मिलती कि वह सो सके । वह रात में वेश बदलकर निकलता है ताकि कोई उसे पहचान न सके, रात ही में वह योजनाएँ बनाता है कि कैसे गाँवों को लूटना है, कैसे काला धन जमा करना है । 'घोषणा' कविता, जिसमें देश के प्रधान के भक्षक रूप को कवि दिखाता है, पढ़ते हुए मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' शीर्षक कविता याद आती है । मुक्तिबोध ने भी दिखाया है कि डोमाजी उस्ताद जैसे अराजक तत्व रात में ही खूनी खेल खेलते हैं । लोकतंत्र में सेंध लगाने की असंवैधानिक कार्रवाई रात में ही सफल होती है । 'घोषणा' कविता में कवि ने दिखाया है कि राजनीति किस तरह अवाम के साथ छल करती है–

राजा चुपके से काटता है चक्कर रात में
नये नये भेस में अलग अलग घात में
जो सोये उनके माथे से तकिया खींचता
फेंकता खलिहान में लुकाठी
मसोमात के खेत से मूली उखाड़ता
खोलता बदरू की पाठी
गुद्दा गटक फेंकता आँगनों में आँठी
जीवन में नींद नहीं ।[154]

अरुण कमल अपनी कविताओं के सहारे आमआदमी को जागृत करते हैं ताकि वह किसी पर आँख मूँदकर विश्वास न कर ले । उनकी कविताएँ खुद पर विश्वास करना सिखाती हैं । आज के इस घोर अनैतिक समय में किसी से सहारे की उम्मीद करने का मतलब है अपनी ही क्षमताओं को कुन्द करना । अरुण कमल की राजनीतिक कविताएँ आज के यथार्थ को देखने की दृष्टि देती हैं । आज जब यथार्थ पर पर्दा डाल कर सही–गलत सबको घंघोंल दिया गया है, ऐसे समय में अरुण कमल की कविताएँ सच के पक्ष में खड़ा होने का जज़्बा पैदा करती हैं ; झूठ को झूठ कहने का साहस दिलाती हैं ।

---

[153] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६६
[154] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–६६

आज राजनैतिक शक्तियाँ पूरे परिवेश को ही गन्दा करने में लगी हुई हैं । 'ये शक्तियाँ समाज को ही नहीं, राज्य के अस्तित्व को भी खोखला बना रही हैं । इस प्रक्रिया में विभिन्न किस्म के अपराध पनप रहे हैं, भ्रष्टाचार पहले से कहीं अधिक हो गया है । नौकरशाही का दबदबा भले ऊपर से कम हो गया है, पर उसका भी और नेताओं का भी दबदबा पहले से बढ़ गया है । आज एक गरीब व्यक्ति लोकसभा-विधानसभा तो क्या पंचायत का चुनाव तक लड़ने के बारे में नहीं सोच सकता ।'[155] ऐसे संक्रमण के दौर में अरुण कमल की राजनीतिक कविताएँ आम इंसान को सुलाती नहीं हैं, बल्कि उसके अन्दर छटपटाहट तथा बेचैनी भरने का काम करती हैं ; स्थिति को बदलने के लिए उम्मीद बँधाती हैं; लाख गन्दगी हो मगर उसके बीच से एक साफ-सुथरी जगह तलाशती हैं जहाँ थके-हारे व्यक्ति को बिठाया जा सके । उनकी कविता के केन्द्र में आमआदमी है, जिसकी सलामती के लिए उनकी कविताएँ प्रार्थना करती हैं, जिस पर छा रहे संकट को देखकर कविताएँ अपनी तरह का प्रतिरोध बुलन्द करती हैं ताकि श्रम करने वाले तबके की नींद में खलल न पहुँचे, ताकि उसकी पहचान को गुम होने से बचाया जा सके । इस अर्थ में अरुण कमल की कविताओं की अपनी प्रासंगिकता है, इस बात से शायद ही किसी को गुरेज़ हो ।

[155] रामशरण जोशी, समकालीन जनमत, (१-१५ अगस्त १९९५), पृष्ठ-१४

चौथा अध्याय

अरुण कमल का भाषा–शिल्प और प्रतिरोध

(क) अरुण कमल की भाषा में प्रतिरोध की आहटें

(ख) अरुण कमल का शिल्प और प्रतिरोध

चौथा अध्याय

अरुण कमल का भाषा–शिल्प और प्रतिरोध

(क) अरुण कमल की भाषा में प्रतिरोध की आहटें

भाषा के कई पक्ष हो सकते हैं, मसलन व्यावहारिक पक्ष, सर्जनात्मक पक्ष । आम तौर पर जो भाषा बोली जाती है उसका काम होता है सूचना देना । एक दूसरे के बीच हम न केवल अपनी कैफियत बजाँ फरमाते हैं, बल्कि अपने अनुभवों की साझेदारी भी करते हैं । यहाँ भाषा सीधे–सीधे तथ्यात्मक होती है । व्यवहारिक भाषा की ख़ासियत होती है कि यहाँ भाषा के इकहरे प्रयोग ही मिलते हैं, भाषा अपनी बात प्रेषित कर उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाती है । जबकि सर्जनात्मक भाषा कई स्तरीय होती है । सर्जनात्मक भाषा ठीक वही नहीं होती जैसी कि हम रोजमर्रा की जिन्दगी में देखते हैं । सर्जनात्मक भाषा में कहन का ढंग मुख्तलिफ़ होता है । यहाँ भाषा सिर्फ जो है उसकी ताकीद ही नहीं करती, बल्कि जो नहीं है उसकी संभावना भी ईजाद करती है । मसलन, भाषा नीले को नीला, पीले को पीला कहकर शान्त नहीं होती, बल्कि नीलेपन–पीलेपन के बाइस तलाशती है । भाषा की सहायता से दुनिया के तमाम काम घटित होते हैं, ग़र भाषा न होती तो मनुष्य कितना कंगाल होता इसे बेहतर समझा जा सकता है । आज हर तरह की गतिविधि के पीछे भाषाई खेल छिपा हुआ है । कवि गोबिन्द प्रसाद की कविता के सहारे हम देख सकते हैं कि किस तरह भाषा बदलने से दुनिया ही बदल जाती है–

भाषा बदलने से
फैलने लगता है अमेरिका का आकाश
भाषा के बदलने से
मुशर्रफ़ के कन्धे उचकना बन्द कर देते हैं
भाषा के बदलने से
सद्दाम का महल ढेर हो जाता है
और बुश के नाम के आगे

विशेषण बढ़ते जाते हैं –जीते हुए तमग़ों की तरह ।[156]

किसी भी कवि के लिए भाषा एक माध्यम है । इसके सहारे वह न केवल अपने अनुभवों को लिबास पहनाता है, बल्कि भाषा की बदौलत वह एक नए तरह का समाज खड़ा करता है । कवि का यह समाज दुनियावी समाज से हर मामले में अलग होता है । अरुण कमल की कविता में भी एक समाज है, जो कँपकँपाता है, जो हाड़ गलाता है, जो खटनी–सोहनी के काम करता है । इस समाज को बुनने में अरुण कमल की भाषा का बहुत बड़ा योगदान है । किसी भी दूसरे कवि की तरह अरुण कमल की पहचान बनाने में उनकी भाषा का योगदान कहीं ज्यादा है । अरुण कमल की काव्यभाषा पर बात करते हुए राजेश जोशी कहते हैं कि–" मुझे लगता है कि भाषा को बरतने का एक अतिरिक्त संयम वहाँ है और भाषा के पुरानेपन के प्रति एक लगाव और जिद भी । (लेकिन इस पुरानेपन को नया करने के उपकरण वहाँ पर्याप्त नहीं हैं) यह संयम एक सीमा पर आकर कवि को रोकता है । वह मन को पूरी तरह मुक्त नहीं होने देता । शायद इसलिए अरुण कभी भी और कहीं भी कविता में 'इर्रेशनल'नहीं होते । अरुण की कविता अपना आपा नहीं खोती । कभी बहकती नहीं, न क्रोध में न मस्ती में ।"[157] अरुण कमल की भाषा में मौशिकी है, वह बेहद तरलता लिए हुए है । जहाँ कहीं भी किसी आदमी को कष्ट में, पीड़ा में कराहते हुए अरुण कमल देखते हैं, वहाँ वे बेहद अपनापे के साथ उससे मिलते हैं । आखिर कवि को रुई के फाहे की जरूरत भी क्या है?किसी ग़मजदा इंसान को देखकर कवि शब्दों का फाहा लिए उसकी ओर बढ़ता है । अपनी कविता में कवि हर उस चीज़ की रक्षा करता है जिसके विलुप्त होने के आज ज्यादा आसार हैं–

केवल शब्दों का फाहा लिये
जाना चाहता हूँ उसकी तरफ से
जो सबसे कमजोर है
जो अपने कौर के लिए भी हाथ उठा नहीं सकता

---

[156] डॉ.गोबिन्द प्रसाद, 'मैं नहीं था लिखते' समय, पृष्ठ–६५
[157] राजेश जोशी, 'एक कवि की नोटबुक', पृष्ठ–२०२–२०३

जो न शासक बनना चाहता है न शासित ।[158]

अरुण कमल की कविताई आमआदमी की कविताई है, जिसमें आमआदमी का सुख–दुःख, आशा–आकांक्षा, सफलता–असफलता देखने को मिलती है; और यही नहीं, जीवन का तटस्थ होकर विश्लेषण भी उनकी कविता का क्षेत्र है । यही वजह है कि अरुण कमल कविता रचते वक्त पूरी तरह से खुद को अवाम के साथ खड़ा करने के लिए शब्द तक आम जनता के लेते हैं । इलियट का भी मानना है कि 'कविता के मुहावरे में होने वाला कोई क्रांतिकारी परिवर्तन बोलचाल के बगैर असंभव है' ।[159] किसी भी कवि को अपनी कविता का धड़ा खड़ा करते वक्त इस बात का सदैव ध्यान रखना पड़ता है कि उसकी कविता बिखरे नहीं और अपनी पूरी बात पाठक तक पहुँचा सके । अरुण कमल भी इस बात का ध्यान शुरू से आखिर तक रखते हैं । रचते वक्त वे बराबर ध्यान देते हैं कि कविता में क्लिष्ट शब्द न हों । जहाँ तक हो सके कविता में आम–फहम शब्द हों क्योंकि कविता जिनके एहसासात का बयान कर रही है, वे साधारण लोग हैं और सरल शब्दों के द्वारा ही उन तक पहुँचा जा सकता है । अरुण कमल की काव्य–भाषा में ताप है जो सर्वहारा को लड़ने का हौंसला प्रदान करता है । उनकी कविता सूचना देती है, घटनाओं को उनकी कैफियत के साथ चित्रित करती है । लेकिन एक बात जो काबिले–गौर है, कि कविता सिर्फ सूचना देकर ही शान्त नहीं हो जाती बल्कि अपने कहन में ही कुछ ऐसा छिपाए होती है जिससे संघर्ष की प्रेरणा मिलती है । अरुण कमल की काव्यभाषा के विषय में डॉ. जगन्नाथ पंडित का मानना है कि " इनकी भाषा कथ्य को खोलती अधिक, छिपाती कम है । इसलिए इनकी कविताओं के सम्प्रेषण का दायरा बड़ा व्यापक है । वहाँ न तो शिल्प का चमत्कार है, न कविता को रूपवादी साँचे में ढालने की कोशिश ही, न कला को अमूर्त्त बनाने की योजना है, न भाषा की जटिल बुनावट ।"[160] कहन का अंदाजे–बयाँ ही अरुण कमल की भाषा का सशक्त पहलू है जो उसे आम–बोलचाल की भाषा से जुदा करता है । काव्य–भाषा का जो प्राथमिक मानी होता है, वह यह कि भाषा सामंजस्य पैदा करती है । अन्तर–बाह्य का जो समाकलन है,

---

[158] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ२३

[159] रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'काव्यभाषा पर तीन निबंध', पृष्ठ–३८

[160] डॉ. जगन्नाथ पंडित, 'समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ–१९५

वह भाषा में दिखता है । जो भाषा अपने भीतर द्वन्द्व को समो नहीं पाती वह काव्य–भाषा को प्राप्त नहीं हो पाती । विजय कुमार ने अपने लेख 'यथार्थ की समकालीनता :कविता की समकालीनता' में सही कहा है कि–" यदि कविता की भाषा में ठहरने, लड़ने–भिड़ने, छीजने, बिखरने, सँवरने का ताप नहीं है;तनाव, खुरदुरापन और कशमकश नहीं है; कौतुक और खिलवाड़ नहीं है तो वह महज एक कामचलाऊ और सूचना देने वाली भाषा है ।"[161] अरुण कमल की भाषा में वह शक्ति है जो कविता के कवितापन की भी रक्षा करती है और प्रतिरोध का स्वर भी बुलन्द करती है । अरुण कमल की कविता लाक्षणिकता से कोसों दूर है । सीधी–सहज भाषा में कवि अपनी बात रखता है । कई जगह अरुण कमल अखबारी भाषा का प्रयोग करते हैं, लेकिन ध्यातव्य है कि अन्तर्वस्तु में सस्तापन नहीं आ पाता; कविता रूप पक्ष का शिकार हुए बगैर प्रतिरोधी तेवर अख़्तियार किए रहती है ;मसलन 'ख़बर' कविता को देख सकते हैं, जहाँ कवि अख़बारनवीस की भूमिका में आता है और एक प्रश्न छोड़ जाता है, जिसमें कड़ा प्रतिरोध छिपा हुआ है–

अख़बारों में ख़बर थी:
कैलिफोर्निया की एक कुतिया ने तेरह बच्चे
एक साथ जने ।
अख़बारों में ख़बर थी:
युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे ।
अख़बारों में ख़बर थी:
विश्वसुन्दरी का वजन 39 किलो है ।
अख़बारों में ख़बर थी:
प्याज बड़ा गुणकारी होता है ।
अख़बारों में ख़बर थी :
राजनेता ने दाढ़ी मुड़ायी ।
एक ख़बर जो कहीं नहीं थी:

[161] विजय कुमार, 'आलोचना पत्रिका', सहस्राब्दी अंक तेईस(अक्टूबर–दिसम्बर २००५), पृष्ठ–३९

किश्ता गौड़ को फाँसी हो गई
एक ख़बर जो ख़बर नहीं थी:
भूमैया को फाँसी हो गयी।[162]

उपर्युक्त कविता में अरुण कमल ख़बरों को सिलसिलेवार ढंग से रखते जाते हैं और अंत में काव्य–न्याय करते हुए दिखाते हैं कि जिनकी ख़बर ली जानी चाहिए थी, जिनके संघर्षों की बात की जानी चाहिए थी, उन्हें हाशिए में भी जगह नहीं मिली। कवि अख़बारी कतरनों को जस का तस काट कर रख देता है, जिससे खुद–ब–खुद प्रतिरोध उफन कर सामने आ जाता है। अरुण कमल की भाषा स्थिति विधायिनी है, घटना को जस–का–तस रख कर कवि मुक्त हो जाता है। जैसे ही पाठक कविता का पाठ करता है, रचना के भीतर छिपा अनबोलापन उभर कर सामने आ जाता है और यह साफ मालूम पड़ जाता है कि आखिर कवि चाहता क्या है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि अरुण कमल की काव्य–भाषा चकमक में छिपी चिनगारी के मानिन्द है जो ऊपर से हल्की मालूम होती है, गोया तापहीन, उष्माहीन। असल में उसकी दाहकता का पता तब चलता है जब उसमें छिपे शब्द देर तक अनुगूँज पैदा करते हैं। 'होटल' कविता में दो घटना–दृश्य हैं। भाषा यहाँ बेहद सहज है। भाषा का करतब तब दिखाई पड़ता है जब दोनों दृश्य पूरे होते हैं। दृश्यों के खत्म होते ही भाषा का प्रतिरोधी मानी खुलता है–

(1)

सब कुछ यही रहता।
ऐसी ही थाली
ऐसी ही कटोरी, ऐसा ही गिलास
ऐसी ही रोटी और ऐसा ही पानी;
बस थाली के एक तरफ
माँ ने रख दी होती एक सुडौल हरी मिर्च
और थोड़ा–सा नमक।

---

[162] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–१५

(2)

जैसे ही कौर उठाया
हाथ रुक गया ।
सामने किवाड़ से लगकर
रो रहा था वह लड़का
जिसने मेरे सामने
रक्खी थी थाली ।[163]

अरुण कमल यहाँ बोलचाल की भाषा में घटना बुनते हैं और अन्त में भाषा में छिपी बच्चे की व्यथा, जो बाहर नज़र नहीं आती, कुछ देर बाद साफ खुलती नज़र आती है । यहाँ कवि थाली, कटोरी, गिलास जैसे शब्दों को प्रयोग में लाता है जो रोज़मर्रा की जिन्दगी में बोले जाते हैं; ख़ास बात यही है कि इन शब्दों का प्रयोग व्यवहारिक जीवन में ठीक वैसे ही नहीं होता जैसा कि कवि ने किया है । यहाँ रोज़मर्रा के शब्द ज़रूर हैं, मगर उनका ढेर खड़ा करने की बजाय कवि उनके भीतर से ऊर्जा खींचता है, जिससे बाल–मजदूरी को दिखाया जा सके । अक्सर यह देखा जाता है कि जटिल जीवन को दिखाने में भाषा भी जटिल होती जाती है, उसमें एक बोझिलता आती जाती है । अरुण कमल ने भाषा को बोझिल होने से बचाया है । यथार्थ के घनत्व का ध्यान रखते हुए भी कवि की भाषा कुहरिल और ऊबाऊ नहीं है बल्कि सहज, सुग्राह्य है, उसमें देसीपन है । कविता का ठेठ देसीपन जहाँ कविता में ग्रामीण समाज को सिरजने में मददगार साबित होता है, वहीं प्रतिरोधी मिजाज को तूल देने में उसकी ख़ास भूमिका होती है । देखने योग्य है 'जिसने खून होते देखा' शीर्षक कविता, जहाँ कवि देशज शब्दों की बदौलत भय को चित्रित करता है–

मैं सब जानती हूँ
मैं उन सब को जानती हूँ
जो धाँगते गए हैं खून

---

[163] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–१६

मैं एक एक जूते का तल्ला पहचानती हूँ
धीरे धीरे वो बन्दूक घूम रही है मेरी तरफ
चारों तरफ ।[164]

उपर्युक्त कविता में कवि ने 'लाँघने' की बजाय 'धाँगना' शब्द प्रयुक्त किया है जिससे कविता में जीवन्तता उत्पन्न होती है । कविता की भाषा इतनी सहज है कि उसमें क्रिया–व्यापार भी आसानी से प्रकट हो जाता है । बन्दूक के घूमने की स्थिति मानों साफ–नज़र आ रही है । 'खून', 'धाँगना', 'तल्ला' जैसे शब्दों ने कविता में चारुता उत्पन्न करने का काम किया है । 'रात के दो बजे' कविता में कवि ने 'रहड़', 'छुरा' जैसे शब्दों की सहायता से प्रतिरोध दर्ज किया है–

रात के दो बजे हैं
सुख से सोया है संसार
और कोई रहड़–कटे खेत की खूँटियों पर
भागता जा रहा है–
चारों तरफ से घेरते आ रहे हत्यारे
हाथ में छुरा लिए ।[165]

इसी तरह की एक कविता है 'घोषणा', जहाँ कवि दिखाता है कि रात के अंधेरे में देश का प्रधान षड्यंत्र रचता है; सबको नींद नसीब होती है मगर उसे नहीं । इस कविता में अरुण कमल ने खाँटी ग्रामीण शब्दावलियों का प्रयोग किया है –

राजा चुपके से काटता है चक्कर रात में
नये–नये भेस में अलग अलग घात में
जो सोये उनके माथे से तकिया खींचता
फेंकता खलिहान में लुकाठी
मसोमात के खेत से मूली उखाड़ता

---

[164] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–२८
[165] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६९

खोलता बदरू की पाठी
गुद्दा गटक फेंकता आँगनों में आँठी
जीवन में नींद नहीं ।[166]

कवि अगर चाहता तो 'भेस' की बजाय 'वेश' शब्द प्रयोग में ला सकता था, मगर कवि ने जान–बूझ कर 'भेस' का प्रयोग किया है । इसी तरह 'तकिया', 'लुकाठी', जैसे शब्दों की बदौलत कवि साधारण जनता से तादात्म्य स्थापित करता है । नामवाची संज्ञा की बात करें तो 'मसोमात', 'बदरू' जैसे शब्दों ने बिम्बात्मकता उत्पन्न करने में मदद की है । एक बात जिसकी ओर इशारा करना लाज़िमी है, वह यह कि 'आँठी' की बजाय कवि 'गुठली' शब्द भी रख सकता था, पर 'आँठी'में क्रियापद को वहन करने की जो सामर्थ्य है, वह 'गुठली' या 'अँठी' में नहीं है । अरुण कमल को शब्दों की संहति का ज्ञान है यही वजह है कि वे ऐसे शब्दों के चक्कर में बिल्कुल नहीं पड़ते, जिनसे कविता को ठेस पहुँचे । उनकी कोशिश होती है कि शब्द आम–बोलचाल के हों, जिससे संप्रेषण में व्यवधान न हो, साथ ही शब्दों का सचल प्रयोग हो सके । बहुत सारे शब्द जो सभ्यता की दौड़ में पीछे छूटते जा रहे हैं, अरुण कमल सर्जना–व्यापार में उन सबकी मदद लेते हैं, ताकि शब्दों को नई अर्थवत्ता मिल सके । 'हमारे युग का नायक' कविता में कवि सर्वहारा का पक्ष लेता है, उसे पूरा विश्वास है कि एक दिन अराजक व्यवस्था का खात्मा हो जाएगा और जो सबसे पवित्र हैं उनके हाथों में ही होगा कि देश की अगुवाई करें । इस कविता में कवि ने अंग्रेजी शब्द, आंचलिक शब्द और आम–बोलचाल के शब्दों का मिश्रण करके एक नई भाषा ईजाद की है –

खत्म हो जायेगा एक दिन मूर्खों का राज
पकवानों का भोग छकता महन्थ
हथगोलों बारूद का ढेर गिनता संत
और माफिया गिरोहों के डॉन
नष्ट हो जायेंगे एक दिन
तब, जिनकी आत्मा सबसे पवित्र है

---

[166] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–६६

तब, जो जगे हैं, रात भर बेचैन ओस से भरे
वे ही आयेंगे आगे
और ले चलेंगे प्रकाश की ओर ।[167]

अरुण कमल की कविता और उसकी भाषा पर विचार करते सहज ही याद आती है 'धार' शीर्षक कविता जहाँ कवि कविता को सर्वहारा के समीप खड़ा करता है –

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार ।[168]

'धार' शीर्षक कविता के विषय में श्रीराम त्रिपाठी का मानना है कि " बिना चीखे–चिल्लाए, चौंकाने वाले बिम्ब बनाए यह कविता जिस तरह से चुपचाप अपनी बात कहती है, पाठक की चेतना न केवल जागृत होती है .सोचने और कियाशील होने को मजबूर होती है । अरुण कमल सशस्त्र क्रांति का संकेत देते हैं, यहाँ ।"[169]

'धार' कविता प्रत्यक्षत: संकेत करती है कि कोई भी जनवादी कवि जब अपनी कविता के माध्यम से प्रतिरोध दर्ज करता है तो उसकी कोशिश यही होती है कि कविता के कवितापन की रक्षा करते हुए उसके साध्य तक पहुँचा जाए । बतौर कवि अरुण कमल कविता के कवितापन की रक्षा करते दिखलाई पड़ते हैं । 'यात्रा' कविता में कवि ने पंजाबी मजदूर की वेदना को जिस भाषा में चित्रित किया है वह रोज़मर्रा की भाषा है । आए दिन बोली जाने वाली भाषा में सहज ही अरबी–फारसी के शब्द घुल मिल गए हैं–

कोई नहीं जानता कब बन्द हो जाएँगी कौन सी मिलें
किनकी होगी छँटनी, किनकी कटेंगी तनखाहें,
सब रह गए थे घर पर दो–एक दिन फाजिल ।[170]

---

[167] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–८८
[168] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–८८
[169] श्रीराम त्रिपाठी, 'धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता', पृष्ठ–२२२
[170] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–१३

'यात्रा' कविता में अरुण कमल अपनी ज़मीन छोड़ कर दूसरे क्षेत्र में दिहाड़ी पर खट रहे मजदूर की पीड़ा को दर्शाते हैं, साथ ही स्थिति के प्रति प्रतिरोध भी दर्ज करते हैं, जो मनुष्य को अपनी धरती छोड़ने पर विवश करती है । यहाँ कवि ने 'वेतन' की जगह 'तनखाह' और 'ज़्यादे' की जगह 'फाजिल' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो स्थिति विधायिनी समस्या को दर्शाने में उचित जान पड़ते हैं । अरुण कमल की काव्य भाषा में अरबी–फारसी के प्रयोग को लेकर विधि शर्मा का मानना है कि "अपनी जिन्दगी का हिस्सा बनाकर अरुण कमल अनेक कविताओं में अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं । 'मशहरी', 'मसोमात', 'मशगूल', 'दखमा' आदि शब्दों की सृजनात्मक उपस्थिति द्वारा कवि लौकिकता का एक भरा–पूरा संसार रचता है ।"[171] निश्चित तौर पर अरुण कमल अपने आस–पास के परिवेश को अपनी जिन्दगी का हिस्सा बनाते हैं । इस क्रम में वे विभिन्न भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से परहेज नहीं करते; जहाँ जैसा शब्द मिलता है उसको उठाते हैं और खराद कर उसको उपयोग में लाते हैं । चाहे अरबी–फारसी के शब्द हों या फिर अंग्रेजी या हिन्दी के देशज–विदेशज शब्द, अपनी बात पाठक समुदाय तक पहुँचाने के लिए अरुण कमल साधारण से साधारण शब्दों का चुनाव करते हैं –

फिर शायद कभी कुछ न सोचूँ
काम में इतना बझ जाउँगा
कि कभी याद भी शायद न आए
पर निशान तो रह ही जाएगा
जैसे पपीते के पूरे शरीर पर
खाँच
हर पत्ते के टूटने की मोच
वैसे ही केवल निशान ।[172]

---

[171] विधि शर्मा, 'कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य', पृष्ठ–४०
[172] अरुण कमल, 'सबूत'. पृष्ठ–११

उपर्युक्त कविता 'सबूत' काव्य संग्रह से ली गई है । इस कविता में कवि 'निशान' शब्द का प्रयोग करता है । गर वह चाहता तो चिह्न शब्द भी रख सकता था, पर नहीं । कवि चूँकि अपनी मिट्टी से प्यार करता है, लोक संस्कृति का वाहक है, इसलिए उसने संस्कृतनिष्ठ शब्द की बजाय देशज शब्द को तरजीह दी है । इस कविता में कवि ने दिखाया है कि व्यस्तता के बावजूद निशान ही है जो प्रतिरोध करने की प्रेरणा देता है, संघर्ष की लौ जलाता है । अरुण कमल के 'सबूत' काव्य संग्रह में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनसे उनकी भाषिक समझ का पता चलता है । डॉ. रेवती रमण 'सबूत' काव्य संग्रह की भाषा पर बात करते हुए कहते हैं –"सबूत की कविताओं में जहर माहुर, बोक्का, गगरा, बझ जाना, गिलास, थन, बयान, खपड़ी, चुरगुन, हरियरी, दियारा, भुआर, लत्तर, छेद, बोल्टमीटर, नीड्ल, खैरियत, उम्रदराज, तसबीह, हर्ज, जुल्म, जुर्म, सफर सरीखे शब्द देशज–विदेशज के भेद से परे अपनी सृजनात्मक उपस्थिति से लौकिकता का एक भरा–पूरा, हर्ष–विषाद समन्वित विविधता का संसार रचते हैं– यह न केवल भाषिक सदाशयता है, बल्कि लक्ष्यनिष्ठ आसक्ति को प्रतिरूपित कर काव्य–भाषा का अनौपचारिक माध्यम उपलब्ध करने का साहसिक उपक्रम भी है ।"[173]

अरुण कमल की अधिकांश कविताएँ स्थितिजन्य अवस्था पर व्यंग्य करती हैं । इन कविताओं की ख़ासियत यह है कि यहाँ कवि शोषण की परम्परा को बेनकाब करता है । इन कविताओं की भाषा में ही कुछ ऐसा है जिससे पता चलता है कि कवि किस तरफ खड़ा होकर देख रहा है, मसलन 'तमगा' शीर्षक कविता को देख सकते हैं । इस कविता में कवि निर्भीक होकर सच के पक्ष में खड़ा होता है । उसे मालूम है कि वह सब कुछ खो चुका है, खोने के लिए अब कुछ शेष नहीं है । भाषा बेहद सहज और सरल है, साथ ही भाषा में कुछ ऐसा छिपा है जो असत्य को कढ़ाई के उतरन की तरह खोलता चला जाता है–

वे हद से हद मुझे मार देंगे
इससे अधिक कोई किसी का कुछ कर भी नहीं सकता
वे एक भिखमंगे को उसके पुरखों के पाप की सजा देंगे

---

[173] डॉ. रेवतीरमण, 'समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ–१३४

एक लोथ को फाँसी
उन्हें डालने दो सूखी नदी पर जाल बादलों को किसका डर है
मुझे किसी का डर नहीं
जो कुछ खोना था खो चुका
जो कुछ पाना है वह कोई देगा नहीं ।[174]

कवि जानता है कि अधिक से अधिक उसे मार दिया जाएगा, उसके शरीर को फाँसी दे दी जाएगी । इससे अधिक भला कोई क्या कर सकता है ! अपनी तँगहाली को वह छिपाता नहीं, बल्कि उसे उन्मुक्त कंठ से स्वीकार करता है । 'लोथ' और 'पुरखे' जैसे शब्दों ने कवि के देशज शब्दों के प्रति गहरे अनुराग को व्यक्त किया है । सरल शब्दों में कविता करना जितना सहज दिखता है, उतना होता नहीं । अभिव्यक्ति को बेलबूटों से रहित हो सहेज पाना सीधा काम नहीं है । यह बेहद कठिन और उलझाऊ काम है । अरुण कमल की कविताओं में सपाटबयानी है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता, साथ ही यह गौर करने वाली बात है कि शब्दों के प्रयोग को लेकर वे ख़ासे सावधान हैं, इसलिए सपाटबयानी कमजोरी न होकर एक कठिन साधना का रूप ले लेती है । काव्यभाषा में सपाटबयानी को लेकर कात्यायनी ने सही कहा है कि "कविता में सपाटबयानी, मेरे ख्याल से एक धरातल पर कमज़ोरी है, तो दूसरे धरातल पर सबसे कठिन कला है । चीज़ों को सीधे–सीधे बयान करना और फिर भी कविता की शर्तों पर –कविता के मानकों पर खरा उतरना यह कोई सुगम काम नहीं ।"[175]

अरुण कमल सच्चे अर्थों में जनवादी कवि हैं, उन्हें न केवल आमजन की निरीहता का बोध है बल्कि आम जन के संस्कारों को विहित करने वाली भाषा की भी सच्ची समझ है । उनकी काव्यभाषा में प्रतिरोध की आहटें तो दिखती ही हैं, साथ ही जनतांत्रिक भावबोध का समाकलन भी हिलकोरें लेता जान पड़ता है । बद्रीनारायण अपने लेख 'असली की असलियत' में कहते हैं कि–" अगर कोई जनतांत्रिक या प्रगतिशील कवि भी बनता है और उसकी भाषा में आधुनिक लफंगों की शब्दावलियाँ आती हैं तो

---

[174] अरुण कमल, 'पुतली में संसार', पृष्ठ–१८
[175] कात्यायनी, 'कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त', पृष्ठ–८७

समझना चाहिए कि उसके पास जनतांत्रिक भाषा–बोध है ही नहीं ।"[176] इस अर्थ में गर अरुण कमल को देखें तो उनके पास जनतांत्रिक भाषाबोध भी है और उसका सही जगह प्रयोग करने की सच्ची समझ भी । जब वे घटना विशेष का वर्णन करते हैं तो उसका सजीव चित्र खिंच सा जाता है । अरुण कमल की काव्यभाषा चित्रधर्मी है, सीधे–सीधे जीवन से साक्षात्कार करने वाली है । उसके पोर–पोर से जीवन निथरता है । अरुण कमल को इस बात का ज्ञान है कि किस तरह कविता को कृत्रिमता से दूर रखकर सीधे जीवन के बीच खड़ा करना चाहिए ।

[176] सम्पादक–देवेन्द्र चौबे, 'साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र', पृष्ठ–१९

(ख) अरुण कमल का शिल्प और प्रतिरोध

कोई भी कवि जब अपने अनुभवों को कागज पर उतारता है तो उसको व्यक्त करने का तरीका उसका अपना होता है, अपने तँई वह कविता को रचता है । बात गर अरुण कमल की करें तो उनकी कविता का शिल्प पक्ष बहुत हद तक ख़ुद का बनाया हुआ है, जो अपने आप में न केवल नया है, बल्कि विलक्षण भी है । अरुण कमल को ग़ालिब, निराला, त्रिलोचन एवं नागार्जुन आदि ने न केवल प्रभावित किया, बल्कि भीतर तक भरने का काम भी किया । अरुण कमल इस मायने में बेहद ईमानदार हैं कि वे कहीं भी अहंभाव से ग्रस्त नज़र नहीं आते । पुरखों द्वारा बनाई गई परम्परा के प्रति उनकी अपार श्रद्धा है । जहाँ भी मौका मिलता है वे परम्परा का दाय अवश्य स्वीकारते हैं । इस मायने में उनकी 'धार' कविता द्रष्टव्य है–

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार ।[177]

अरुण कमल की कविताओं में लोकरंग दिखाई पड़ता है । काव्य में लोक को लेकर वे बेहद सचेत हैं । लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे न केवल कविता की चारुता को बढ़ाते हैं, बल्कि कई जगह प्रतिरोध का स्वर तीव्र करने में उनकी ख़ास भूमिका होती है । उदाहरण स्वरूप 'एकालाप' कविता को देख सकते हैं–

झड़ना था तो खेत में झड़ता
दाई माई चुन लेतीं
झड़ना था तो राह में झड़ता
चिड़िया चुरगुन चुन लेतीं
अब तो खंखड़ हूँ मैं केवल
दाना था सो घुन खा बैठे ।[178]

---

[177] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–८८
[178] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–२२

उपर्युक्त कविता में कवि ने लोक से कहावत ग्रहण किया है, पर उसे व्यक्त करने का तरीका स्वयं कवि का है । 'एकालाप' कविता में कवि ने निम्नमध्यवर्गीय जीवन को दिखाया है कि किस तरह बिना मार्गदर्शन के एक युवा भटक जाता है, अंत में उसके हाथ कुछ नहीं लगता । फिर सिवा स्थितिविशेष को कोसने के कुछ नहीं रह जाता । यहाँ कवि ने कहावतों का सहारा लेकर स्थिति के प्रति विरोध दर्ज किया है । इस कविता में गहन निराशा का भाव चित्रित है । कविता के शिल्प में प्रतिरोध है, जो बाहर से गौण दिखता है, लेकिन जैसे ही कविता का पाठ समाप्त होता है, भीतर तक फैला प्रतिरोध उभर कर सामने आ जाता है । ऐसी ही एक कविता है 'उत्सव', जिसमें कवि मुक्तक के माध्यम से प्रतिरोध दर्ज करता है–

देखो हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान
जिनके मुँह में कौर माँस का उनको मगही पान

* * *

प्रजातन्त्र का महामहोत्सव छप्पन विध पकवान
जिनके मुँह में कौर माँस का उनको मगही पान ।[179]

भाव पक्ष के लिहाज़ से कविता अंधी राजनीति और आपराधिक गतिविधियों पर कटाक्ष करती है । शिल्प के लिहाज से कविता अपने रचाव में पूर्ण है । कविता में छन्दोबद्धता है । जैसे बिहारी के विषय में कहा जाता है कि वे गागर में सागर भरने वाले कवि हैं, ठीक वैसे ही अरुण कमल के विषय में हम कह सकते हैं कि घटना विशेष का चित्रण करने में वे सिद्धस्त हैं । भावों के प्रकटीकरण के लिए वे अवसर के अनुरूप छन्दोबद्धता और छन्दविहीनता दोनों को स्वीकारते हैं । 'उत्सव' कविता पर बात करते हुए नागार्जुन की 'शासन की बंदूक' कविता सहज ही याद आती है । दोनों कविताओं का न केवल विषय एक है, अपितु शिल्प को लेकर भी दोनों कविताओं में समतुल्यता है । संभव है अरुण कमल के कवि मन ने बाबा नागार्जुन की कविता से भावगत और शिल्पगत प्रेरणा पाई हो । अरुण कमल की कविताओं की संरचना पर गर बात करें तो उनकी काव्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है आकारगत लघुता । जीवन की जटिलताओं

---

[179] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–६२

को कम शब्दों में बाँध पाना सहज नहीं है । अरुण कमल जीवन की विषमताओं को कम शब्दों में दिखाते हैं । डॉ. रेवतीरमण का मानना है कि " एक समकालीन कवि के रूप में अरूण कमल की पहचान आमतौर पर उनकी छोटी कविताओं के कारण ही बनी है । प्रगीत–मुक्तकों के मेल में उन्होंने ज्ञानात्मक संवेदना के अक्सर मर्मस्पर्शी दृश्य खण्ड प्रस्तुत किए हैं, जो काव्य–वस्तु की नवीनता से कहीं ज्यादा शिल्प का चमकदार टुकड़ा होने के कारण कई बार हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास की सूचना देते हैं।"[180]

हिन्दी कविता की जो विकास यात्रा है उसको समृद्ध करने में अरुण कमल की कविताओं का विशेष महत्व है । इनकी कविताओं का मूड बिम्बात्मक है । कविता पाठ के बाद वही नहीं रहती जो पहले होती है, पाठ के बाद कविता अमूर्त न रहकर मूर्त हो जाती है । पाठक के मस्तिष्क पर उसकी छाप अंकित हो जाती है । इसी क्रम में देखने योग्य है 'वे और हम' कविता । कविता पढ़ने के बाद सर्वहारा की छवि सहज ही पाठक के मन में उकर जाती है –

कितने आजाद हैं वे लोग
जो रीठे के खोल में सूखी गुठली–सा
बज रहे हैं लगातार निर्द्वन्द्व
उन्हें छुएगी कौन हवा
उन्हें कहे कौन कि एक हाथ है बाहर
जो उन्हें बजाता है बार–बार ।[181]

उपर्युक्त कविता में कवि ने दिखाया है कि किस तरह आमजन लगातार संघर्ष कर रहा होता है । उसे ज़रा भी अपने ऊपर संदेह नहीं होता । उसे विश्वास होता है कि वह समय का रुख मोड़ देगा । कविता के शिल्प में ही क्रियात्मकता छिपी हुई है । संघर्ष कर रहे लोग दिखाई पड़ते हैं । कवि उनका जस का तस प्रतिरूप खींच देता है ।

अरुण कमल की कविताओं में लयात्मकता भी प्रमुख तत्व है । कविता में कवितापन झलकता है । साथ ही लयात्मकता और तनाव देखते बनते हैं–

---

[180] डा. रेवतीरमण, 'समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ–१२४
[181] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–५५

कोई जँजीर बाँध रहा है
कोई जमा रहा है बक्स माथे के नीचे
कोई जेब टटोलता होता है निश्चिन्त
कोई पत्नी से कहता है उतार लो झुमका
अपने जानते कितनी चतुराई कितने उपाय करता है हर कोई
पर सबकी आँख बचा
वह आएगा अकस्मात्
इतना भी वक्त नहीं होगा कि तुम
बेग से निकाल सको अपनी प्रिय किताब
और बोलो, ले जाओ बेग ।[182]

उपर्युक्त कविता में कवि ने 'कोई' शब्द की सहायता से लयात्मकता उत्पन्न की है। कविता रचते समय कवि के आस–पास का माहौल बड़ी भूमिका निभाता है, पर इसके साथ यह भी गौर करने वाली बात है कि कवि आस–पास की घटनाओं को पोस्टर की शक्ल में जस का तस नहीं उतारता, बल्कि अपने कामनसेंस के आधार पर कटी–छँटी रेखाएँ बनाता है, फिर शिल्प और भाषा की सहायता से अनुभव विशेष को मूर्त करने का काम करता है । अरुण कमल का कवि व्यक्तित्व तरह–तरह के प्रयोग करता है । कभी वह कविता को ठेठ कवितापन के अंदाज में परोसता है तो कभी कविता में कथा तत्व की सर्जना करता है । हाँ, इतना ज़रूर है कि प्रयोग करते समय वह कभी नहीं भूलता कि उसकी कविता का आधार कौन है । किसके लिए और क्यों कविता लिखी जा रही है, इसका हमेशा उसे भान रहता है । उसको मालूम है कि कविता प्रतिरोध की चौकी है, कविता के माध्यम से उसे गढ़ों–मठों को तोड़ना है । बतौर उदाहरण, 'लोककथा' कविता को देखा जा सकता है । यहाँ कवि कविता के द्वारा आज की निपट स्वार्थपरता का उपहास उड़ाता है, लेकिन तरीका नया है । कवि कविता रच रहा है और वह भी किस्सागोई की शक्ल में–

पर गाँव का एक भी आदमी नहीं आया

---

[182] अरुण कमल, 'नए इलाके में', पृष्ठ–४७

सबने सोचा डकैत बुरा मान जायेंगे
तब तीन जन ने अर्थी उठायी
और बेटे को बाप ने आग दी
किस्सा गया वन में
सोचो अपने मन में ।[183]

अरुण कमल की कविता में खाँटी गद्यात्मकता नहीं मिलती, और न ही वाक्य इतने लम्बे होते हैं कि नीरस लगने लगें । कविता में लोच बराबर बना रहता है, शब्द और अर्थ में इतनी समतुल्यता होती है कि भाषा में प्रवाह आद्यंत दिखलाई पड़ता है । भाषा कहीं से ऊबाऊ और बोझिल नहीं रहती । भाषा और उसके शिल्पगत प्रयोग में कवि निपुण है । जब उसे लगता है कि यथार्थ जटिल है और उसे कविता के फार्म में डालने पर जटिलता और बढ़ेगी, तत्क्षण कवि गीतात्मकता का सहारा लेकर यथार्थ को परिष्कृत रूप में पेश करता है–

ढोते रहें ध्वनियाँ
ढोते रहें सैकड़ों आवाजें
इसी तरह इसी तरह
इसी तरह इसी तरह
जोड़ते रहें गाँव गाँव
शहर शहर
आदमी आदमी ।[184]

यहाँ कवि ने शब्दों के दुहराव द्वारा आमजन को एक जुट करने का काम किया है। इसी तरह एक कविता है 'असंवैधानिक मौत' । इस कविता में कवि ने लोकतंत्र और समाजवाद पर गहरा व्यंग्य किया है । व्यंग्य करने के लिए कवि जिन उपमानों का सहारा लेता है वे परम्परागत न होकर आधुनिक हैं –

मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था
किसी को भूख से मरते

---

[183] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–५७
[184] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–५७

मैंने सोचा भी नहीं था
कि आदमी का पेट पिचक कर
सिर्फ सूखा पत्ता भी बन सकता है
और मृत्यु यों बीच सड़क पर
सौ आदमियों के बीच हो सकती है।
यह कितनी अजीब बात है
कि आदमी पीपल के सूखे पत्ते की तरह
लोकतन्त्र और समाजवाद
दो पन्नों के बीच सुरक्षित है।[185]

उपर्युक्त कविता में कवि ने लोकतन्त्र और समाजवाद पर करारा व्यंग्य किया है। 'एक बार भी बोलती' शीर्षक कविता में कवि ने मृत्यु के पहले आँखों के हिलने मात्र से प्रतिरोध दर्ज किया है। जीवन भर स्त्री विरोध नहीं करती, पति द्वारा दी गई यातनाओं को सहती है। लेकिन मृत्यु के समय जैसे ही उसकी आँख डोलती है, उत्पीड़क पति भीतर तक हिल जाता है–

अभी भी मैं समझ नहीं पाया
कि वह कभी बोली क्यों नहीं
मरते वक्त भी वह कुछ नहीं बोली
आँखें बस एक बार डोलीं और...
वह कभी बोली क्यों नहीं
एक बार भी बोलती।[186]

उपर्युक्त कविता में कवि वाक्य के द्वारा विचलन उत्पन्न करके प्रतिरोध पैदा करता है, जो मानीख़ेज है। अरुण कमल की एक कविता है 'जैसे', जिसमें कवि उदाहरणों का अम्बार खड़ा करता है, फिर धीरे से एक नया उदाहरण प्रस्तुत कर प्रतिरोध व्यक्त करता है। यहाँ कवि अन्त में अपनी असहमति दर्ज करता है, जो मारक है–

---

[185] अरुण कमल, 'अपनी केवल धार', पृष्ठ–६८
[186] अरुण कमल, 'सबूत', पृष्ठ–१९

जैसे
मैं बहुत सारी आवाज़ें नहीं सुन पा रहा हूँ
चींटियों के शक्कर तोड़ने की आवाज़
पँखुड़ी के एक एक कर खुलने की आवाज़
गर्भ में जीवन बूँद गिरने की आवाज़
अपने ही शरीर में कोशिकाएँ टूटने की आवाज़
इस तेज बहुत तेज चलती पृथ्वी के अन्धड़ में
जैसे मैं बहुत सारी आवाज़ें नहीं सुन रहा हूँ
वैसे ही तो होंगे वे लोग भी
जो सुन नहीं पाते गोली चलने की आवाज़ ताबड़तोड़
और पूछते हैं– कहाँ है पृथ्वी पर चीख?[187]

उपर्युक्त कविता में शिल्प के स्तर पर कवि प्रयोग करता है । आए दिन घट रही घटनाओं को कवि एक पर एक रखता जाता है, और दिखाता है कि किस तरह हम अपने आस–पास के परिवेश से अनभिज्ञ हैं, किस तरह आए दिन हो रही हत्याओं से हम अनभिज्ञ हैं । यहाँ कवि ने सामान्य उदाहरणों की फेहरिश्त द्वारा कविता के शिल्प और बुनावट में परिवर्तन किया है । अरुण कमल के चारों कविता संग्रहों की गर बात की जाए तो पाएँगे कि बाद के संग्रहों में न केवल भाषागत क्षरण दिखता है, बल्कि शिल्प को लेकर जो उनके यहाँ शुरूआत में प्रयोग हैं, उसमें भी गिरावट दिखलाई पड़ती है । इस तरह 'अपनी केवल धार' संग्रह से शुरू होकर जो भावधारा लगातार बढ़ रही थी, वह अंतिम काव्य संग्रह 'पुतली में संसार' तक आते–आते सूखती हुई नज़र आती है । 'पुतली में संसार' काव्यसंग्रह रचनात्मकता की दृष्टि से काफी कमजोर है । 'पुतली में संसार' की 'पुतली में संसार', 'पूँजी, 'आत्मकथा' 'तमगा', 'तड़ाग', 'उधर के चोर', 'मुठभेड़', 'मातृभूमि', 'साथ', 'आत्मकथ्य' सरीखी कविताओं को गर छोड़ दिया जाए तो न केवल विषयवस्तु के लिहाज से, बल्कि भाषा और शिल्प के लिहाज से भी यह संग्रह कमजोर दिखता है । खैर, यह तो रही अंतिम काव्यसंग्रह की बात । इसके पहले

---

[187] अरुण कमल, 'नये इलाके में', पृष्ठ–६३

के जितने भी काव्यसंग्रह हैं उनमें विविधता है, रचाव है । यही नहीं, जीवन को विस्तार में देखने वाली दृष्टि भी है, जिससे शायद ही इन्कार किया जा सके । अरुण कमल की कविताओं में भावना का पुट शिल्प की अपेक्षा ज्यादा है । वे चमत्कार दिखाने के लिए कविताओं में विचलन नहीं दिखाते, बल्कि जीवन व्यापार को उसकी समग्रता में रचते हैं। इस तरह इनके यहाँ जो रचाव है, वह आयातित नहीं है, बल्कि जीवन का चित्रण करने में सहजरूप से कविता शिल्पगत तागे में गुँथती चली जाती है, उसके लिए जबरन कवि को बिंबों का अम्बार नहीं खड़ा करना पड़ता । अरुण कमल जीवन को दबे पाँव जाकर देखने वाले कवि हैं । जीवन का जो निर्झर संगीत है, उसमें उनका कवि मन किसी भी तरह का खलल बर्दाश्त नहीं करता । कई बार वह चाहता है कि प्रकृति की सहजता, सुग्राह्यता बाधित न हो, उसकी नैसर्गिकता से खिलवाड़ न किया जाए । यही वजह है कि वह बहुत अधिक शिल्पगत फेरबदल न करते हुए जीवन को जीवन की तरह सीधे ग्रहण करता है । अब इस संदर्भ में अगर कहा जाए कि अरुण कमल के यहाँ शिल्प के स्तर पर विविधता नहीं है तो यह उनकी कविता के साथ अन्याय करने जैसा ही होगा । किसी भी कवि का मूल्यांकन बने– बनाए मानदण्ड के तहत नहीं किया जा सकता । कई बार कवियों को देखते–भालते समय उनकी अनुपयोगी तुलना की जाती है, एक कवि के सापेक्ष दूसरे कवि को भाषा और शिल्प के स्तर पर छोटा या बड़ा सिद्ध करने का कार्य आलोचकों द्वारा किया जाता है । इससे सृजनात्मकता उपेक्षित होती है । हर कविता अपने साथ मूल्यांकन का सर्वथा अलग औजार लेकर आती है । किसी कविता की भाषा अमूर्त और शिल्प बेहद जटिल होता है, लेकिन इससे कविता महनीय नहीं हो जाती । कई बार भाषा और शिल्प का सामन्जस्य बेहद सादा होता है, कविता नाटकीयता और कुहरिलता दोनों से ही अलग अपनी पहचान बनाती है, अगर ऐसे में कविता और कवि दोनों को कमतर आँका जाए तो यह परले दर्जे की मूर्खता है । अरुण कमल की कविता के शिल्प पक्ष की सबसे बड़ी ख़ासियत है उसका सहज होना । उनकी कविता कहीं से भी अलंकरणों और भाषाई करिश्माई का सहारा नहीं लेती । जीवन को उसकी सच्चाई के साथ ग्रहण करती हुई अरुण कमल की कविता नैसर्गिक है, उसमें किसी तरह की कृत्रिम कलाकारी नहीं है । ऐसे में गर कलावादी निगाहों से जबरन उनकी कविता में दोष

देखा जाए तो यह भी संभव है, लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रखना होगा कि आज के बेहद जटिल समय में कविता का निपट सरल होना अपने आप में एक प्रतिरोध है । आज का कवि पुराने मानदण्डों के तहत कविता की खतियौनी करने से आगाह करता है, वह जानबूझ कर बड़े-बड़े शब्दों का जाल नहीं फेंकता । कविता को लोक के समीप खड़ा करने के लिए उसकी संरचना तक में आज का कवि सहजता को बरतता है । उसके द्वारा खड़ी की गई इमारत में नए शिल्प की आहट सुनी जा सकती है । अरुण कमल की कविता में बनैला जीवन दिखता है, शहरीपन की शिष्टता के बरक्स गँवई जीवन की सहजता दिखती है । यह सहजता ही उनकी कविता की सबसे बड़ी ताकत है। उनकी कविता के विषय में जगन्नाथ पंडित का मानना है कि "अरुण कमल की कविता स्वत: नि:सृत है । उसमें शिल्प का आग्रह नहीं है । उनके शिल्प में जटिलता नहीं । रोजमर्रे की सहज, स्वच्छ भाषा में जीवन की धड़कन और गति को पकड़ने की कोशिश है । उनका उद्देश्य सामान्यजन तक अपनी रचना को पहुँचाना है । अत: उनकी दृष्टि अन्तर्वस्तु पर केन्द्रित है । लेकिन शिल्प की भी उपेक्षा नहीं है । वस्तु और शिल्प का सहज समन्वय उनकी रचना में संतुलन पैदा करता है । उनका शिल्प बिखरा हुआ नहीं है । उनमें कलात्मक संयम और गांभीर्य है किन्तु यह भी सच है कि विशुद्ध कलात्मक मानदण्डों पर उनकी रचना का मूल्यांकन न्यायसंगत नहीं ।"[188]

[188]डॉ. जगन्नाथ पंडित, 'समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य', पृष्ठ-१९६

उपसंहार

उपसंहार

अगर देखा जाए तो सदियों से ऊँच–नीच, अमीरी–गरीबी की खाई समाज के अन्दर रही है । समस्या असमानता के होने को लेकर नहीं है, बल्कि जान बूझकर एक खास तबके को असमान बनाए रखने की भावना का है । सदियों से सुविधा सम्पन्नवर्ग वंचित तबके को शोषित, प्रताड़ित करता आया है । अब तक के मनुष्य के विकास–क्रम को देखें तो उत्पीड़न और अत्याचारों की लम्बी फेहरिस्त बन सकती है । सामाजिक व्यवस्था में ऊपर बैठा तबका सदा अपने से निचले तबके का शोषण करता रहा है, उसे जल, हवा और जीवन के महत्वपूर्ण तत्वों से महरूम करता रहा है । अब तक का इतिहास द्वन्द्व का इतिहास रहा है । सत्ता के लिए किए संघर्षों का इतिहास रहा है । वर्चस्वशील वर्ग ने नैतिकता की दुहाई देकर नियम बनाए, परिभाषाएँ गढ़ीं और उन परिभाषाओं से खुद को बाहर रखा । जीवन मूल्यों का संरक्षण करने वाले खुद मूल्यों के हन्ता बन गए । सबसे बड़ा उदाहरण तो यह है कि भारत की आजादी के साठ साल हो गए और इन साठ सालों में जाति –जस की–तस है । कितना भी पढ़–लिख ले, बावजूद इसके बुद्धिजीवी वर्ग जाति से इतर नहीं सोच सकता। सत्ता के गलियारे से प्रशासनिक अभिकरणों तक भाई–भतीजावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद फैला हुआ है । पूरा का पूरा समाज सड़ चुका है और बात परम्परा की की जाती है । परम्परा के नाम पर, संस्कृति के नाम पर हिन्दू और मुस्लिम पार्टियाँ बन रही हैं और इनके सहारे एक दूषित संस्कृति फैलायी जा रही है, जिसका शिकार केवल बड़े–बूढ़े ही नहीं, बल्कि बच्चे भी हैं जिसकी वजह से वे अधकच्ची उम्र में बन्दूकों में गोलियाँ भरना सीख रहे हैं । समकालीन समय पहले से कहीं अधिक भयावह और दुर्दान्त है । आज के प्रश्न भी पेंचीदे और कहीं अधिक दुरूह हैं, जिनका सरलीकृत ढंग से समाधान सम्भव नहीं है । बौद्धों–सिद्धों से लेकर कबीर–नानक से होते हुए महात्मा गाँधी तक आ जाइए, हर किसी युगान्तकारी व्यक्ति ने समरसता की बात की, विध्वसंक रास्ते को नकार कर लोगों को जोड़ने की बात की, किंतु शोषण की परम्परा खत्म होने की बजाय अलग–अलग रूपों में बनी रही । सत्ता अपना खूनी खेल खेलती रही और मानवता दर–ब–दर ठोकरें

खाती रही । जैसे-जैसे मनुष्य ने प्रगति के संसाधनों का विकास किया वैसे-वैसे मनुष्यता कहीं अधिक बर्बर और उच्छृंखल होती रही । समकालीन कविता आज के प्रश्नों से सीधी मुठभेड़ करती है, शोषण के जितने भी अड्डे हैं उन सबका प्रतिकार करती हुई प्रतिरोध की आवाज़ को तीव्र करती है । आज का युग घोर पूँजीवादी है, हर एक वस्तु को उपयोगितावादी नज़रिए से देखा जाता है । गरीबी और निरक्षरता आज के युग की सबसे बड़ी समस्या हैं । हैरत तब होती है जब सत्तामूलक प्रतिष्ठान विकास के नाम पर सभ्यता को पीछे ले जाने का काम करते हैं, गरीबी को दूर करने की बजाय गरीबों का खून चूसकर अपनी जेबें गरम करते हैं । लोगों को साक्षर बनाने की जगह निरक्षरता और बदहाली में गुजर बसर करने को मजबूर करते हैं । समकालीन कविता वर्चस्ववादी शक्तियों की छिपी हुई मंशा को उजागर करती है;जातिवादी गढ़ों और मठों का भन्डाफोड़ करती है । समकालीन कविता का मूल स्वर ही प्रतिरोधी है, कविता को इतनी बड़ी लड़ाई का सामना पहले नहीं करना पड़ा, क्योंकि पहले साफ-साफ पता चलता था कि दुश्मन कौन है, शोषक कौन है, आज शोषकों ने चेहरे के ऊपर कई चेहरे लगा रखे हैं । आज साहित्य भी कई जगह चंदा उगाही के काम में लगा हुआ है, चापलूसी और काहिलता आज काबिलियत के प्रतिमान-से बन गए हैं । राजनीति में चोरों और डकैतों की पहुँच है । सही मायने में जो बुद्धिजीवी हैं, उनकी संख्या बहुत कम है । फिर भी इतना तो तय है कि जिसे मुक्तिबोध ने जनता का साहित्य कहा था, उसकी असली परीक्षा की घड़ी आन पड़ी है । ज़रूरत है भ्रष्टाचार को खत्म करने की, शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था को बदलने की । गोहाना में दलितों की बस्तियाँ जलायी जा रही हैं, झज्झर में स्त्रियों का बलात्कार बदस्तूर जारी है । अब साहित्य को एक्टिविस्ट की भूमिका का निर्वहन करना है, प्रतिरोधी रुख अख्तियार कर शोषण के प्रतिष्ठानों पर धावा बोलना है । एक तरह से आज साहित्य को दुहरी भूमिका निभानी है- उसे शोषण पर आधारित व्यवस्था का प्रतिरोध तो करना ही है साथ ही अपने साहित्यिक रूप को बाजार की भेंट चढ़ने से बचाना भी है । समकालीन कविता बख़ूबी जानती है कि उसे कैसे और किस तरह अन्याय का प्रतिकार करना है । अरुण कमल की कविताएँ सही अर्थों में समकालीनता का परिचय देती हैं, इन्हें मालूम है कि शोषक दबे पाँव

आएगा और किसी को कानों कान ख़बर न होगी । इनकी कविताएँ पाठकों को आगाह करती हैं कि आज का समय ही ऐसा है कि सरे राह औरत की इज्जत लूटी जाती है और लोग चूँ तक नहीं करते । लोगों को अन्याय का उत्तर देने के लिए कविताएँ सन्नद्ध करती हैं । इस भूमण्डलीकरण के युग में सब कुछ प्रसारणीय है बावजूद इसके, किसी की चीख सुनाई नहीं पड़ती क्योंकि लोगों ने अपने कान बंद कर रखे हैं । भय और हताशा के क्षणों में जब मध्यमवर्गीय व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में सोचता है, ऐसे में अरुण कमल की कविताएँ थके- हारे व्यक्ति का कंधा बन जाना चाहती हैं । आज के शहरीकरण के माहौल में हर चीज़ शहरी आबो-हवा में तब्दील होती जा रही है । गाँव उजड़ रहे हैं और इस वीरानगी में एक नई संस्कृति गढ़ी जा रही है, जो खाए -पिए, अघाए लोगों की संस्कृति है, जिन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता, अगर कोई बच्चा भूख से दम तोड़ रहा हो । जिन्हें केवल अपना सुख महत्वपूर्ण लगता है, ऐसे लोगों के खिलाफ अरुण कमल की कविताएँ प्रतिरोध करती है । गाँव की लोकधुनों और गँवई संस्कारों को बचाती हुई इनकी कविताएँ शहरीकरण की एन्टीथीसिस बन जाना चाहती हैं, गाँवों को फिर हरा-भरा और खुशहाल देखना चाहती हैं । बतौर कवि, अरुण कमल जानते हैं कि जो थोड़े बहुत मूल्य शेष बचे हैं, जिन्हें कोई चुरा नहीं पाया, वह गाँवों की बदौलत है । अरुण कमल आज की उत्तर आधुनिक संस्कृति के बरक्स ग्रामीण संस्कृति रचते हैं जो अपने आप में आज की चकाचौंध भरी भौतिकता का प्रतिरोध है । अरुण कमल की कविताएँ सिर्फ स्थानीय होकर नहीं रह जातीं, बल्कि जहाँ भी उन्हें जुल्म दिखता है, वहाँ वे प्रतिरोध की चौकी स्थापित करती हैं । यही वजह है कि पर्याप्त देशी होते हुए भी कविताएँ अन्तर्राष्ट्रीय फलक अख़्तियार करती हैं और बताती हैं कि जहाँ भी अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की जाती है, वहाँ कुछ भी निजी नहीं होता; वहाँ सब कुछ सार्वजनिक है । पुलिसिया जुल्म को कविताएँ दिखाती हैं । मखमली गलीचे पर सोने वाले राजनेताओं की आपराधिक संलिप्तताओं को कविताएँ खोलती हैं ।

समकालीन कविता जनवादी कविता है, जनवादी मूल्यों और मर्यादाओं की रक्षा करने वाली कविता है । यही वजह है कि उसकी भाषा तक बोलचाल की है । उसमें कृत्रिमता का लेश मात्र भी अंकन नहीं है । अपने रचाव तक में जनवादी तेवर अख्तियार

किए हुए कविता सहज भाषा में बढ़ना चाहती है । कवि लीलाधर जगूड़ी ने 'बची हुई पृथ्वी' नामक अपने कविता संग्रह में आज के कवि की भाषा के विषय में जो कुछ कहा है वह एकदम सटीक है –

ज़मीन की भाषा में ज़मीन को, पानी की भाषा में पानी को
कुछ कहना कितना मुश्किल है, अपनी भाषा में अपने को

सचमुच अपनी भाषा में संघर्ष करना, अपनी भाषा में सृजन करना बेहद मुश्किल होता है, क्योंकि अपनी भाषा में जहाँ प्रवाहमयता की सहूलियत होती है, वहीं बहकने और बिखरने की संभावना भी अधिक होती है । बतौर कवि, अरुण कमल सहज भाषा में प्रतिरोध को साधते हैं, कहीं भी दुरूह शब्दों का प्रयोग न करते हुए आमजनमानस तक उसी के शब्दों के सहारे पहुँचना चाहते हैं । शिल्प के स्तर पर भी अरुण कमल की कविताएँ निरलंकृत हैं । जीवन को जीवन रूप में पाने की खोज उनकी कविताएँ करती हैं । घटनाओं का सहज चित्रण करते हुए प्रतिरोधी मिजाज प्रस्तुत करने का काम कविताएँ करती हैं । बतौर कवि, अरुण कमल कविता के कविता रूप की रक्षा करते दिखाई पड़ते हैं । उनकी कविताओं में लयात्मकता आद्यंत बनी रहती है । विरोध में उठीं कवि की अगुँलियाँ जिस भाषा में प्रतिरोध को तत्पर होती हैं, उसमें एक खास तरह का आरोह–अवरोह रहता है । इससे तय है कि कवि प्रतिरोध करना चाहता है, व्यवस्था बदलना चाहता है लेकिन कविता की शर्त पर नहीं । उसे कविता को साधना है, साथ ही कविता जिसके लिए लिखी जा रही है, उस पाठक वर्ग तक अपनी बात भी पहुँचानी है । इसलिए कवि अपने प्रत्येक काव्य संग्रह से पूर्व अपने प्रिय कवि तुलसीदास की विनयपत्रिका से ली गई पंक्तियाँ उद्धृत करता है, जिसमें पाठक वर्ग के अस्तित्व का पर्याप्त ध्यान रखा गया है–

विनयपत्रिका दीन की बापु आप ही बाँचों
हिय हेरि तुलसि लिखी सो सुभाय सही करि
बहुरि पूँछिए पाँचों

अरुण कमल की कविताएँ आलोचकों और पाठकों को भरपूर स्वतंत्रता देती हैं कि वे अपनी तरह से कविता का भाष्य प्रस्तुत करें । स्त्री, बच्चे, मजदूर और निरपराध

लोग कवि को अत्यंत प्रिय हैं, जिनकी सुरक्षा के लिए कवि पल भर की देरी नहीं लगाना चाहता । उसके द्वारा लिखी कविताओं का उत्स भी वही वर्ग है जो न शासक बनना चाहता है और न ही शासित; जिसके लिए दो वक्त की रोटी बहुत महत्वपूर्ण है । कवि अपनी कविता को उन तमाम वंचित लोगों को समर्पित करता है जो अभावग्रस्त जीवन जी रहे होते हैं । इस तरह अरुण कमल की कविताएँ दबे–कुचले और वंचित लोगों तक रुई के फाहे के रूप में पहुँचना चाहती हैं जिससे उनके कष्टों को आत्मसात कर सकें । अरुण कमल लगातार सृजनरत हैं । उनसे यही आशा है कि पुरानी कृतियों से इतर आगे भी कुछ नया प्रस्तुत करते रहेंगे, जिससे शोषित वर्ग को जीवनीशक्ति प्राप्त होती रहेगी –

यह वो समय है जब
शेष हो चुका है पुराना
और नया आने को शेष है ।

संदर्भ–सूची

आधार ग्रन्थ

अरुण कमल — अपनी केवल धार
वाणी प्रकाशन
२१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२
संस्करण: २००६

अरुण कमल — सबूत
वाणी प्रकाशन
२१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११० ००२
नवीनतम संस्करण: २००४

अरुण कमल — नये इलाके में
वाणी प्रकाशन
२१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२
तृतीय संस्करण: २००६

अरुण कमल — पुतली में संसार
वाणी प्रकाशन
२१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२
संस्करण: २००६

सहायक ग्रंथ

अनामिका

दूब–धान
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नई दिल्ली–११० ००३
पहला संस्करण:२००७

अरुण कमल

कविता और समय
वाणी प्रकाशन
२१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२
संस्करण:२००२

आलोकधन्वा

दुनिया रोज़ बनती है
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
१–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली–११० ००२
पहला संस्करण:१९९८
पहली आवृत्ति:२०००

ओम भारती

कविता की आँख
विभा प्रकाशन
५०, चाहचन्द, इलाहाबाद–२११००३
प्रथम संस्करण:१९८९

उदय प्रकाश

अबूतर–कबूतर
राधाकृष्ण प्रकाशन,
२/३८, अंसारी रोड, दरियागंज
नई–दिल्ली–११० ००२
प्रथम संस्करण: १९८४

एकान्त श्रीवास्तव

कविता का आत्म पक्ष
प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१,
दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली–११० ००२
प्रथम संस्करण:२००६

एमिल बर्न्स

मार्क्सवाद क्या है
राहुल फ़ाउण्डेशन
६९, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ–२२६ ००६
प्रथम संस्करण: जनवरी, २००६

कात्यायनी

इस पौरूषपूर्ण समय में
वाणी प्रकाशन,
२१–ए, दरियागंज,
नई–दिल्ली–११० ००२
प्रथम संस्करण: १९९९

कात्यायनी

कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त
परिकल्पना प्रकाशन,
जनचेतना– डी–६८,
निराला नगर, लखनऊ(२२६०२०)
प्रथम संस्करण:जनवरी २००६

कुमार अंबुज

अनंतिम
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई–दिल्ली–११० ००२
पहला संस्करण: १९९८

गोबिन्द प्रसाद

मैं नहीं था लिखते समय
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नई दिल्ली–११० ००३
पहला संस्करण:२००७

जगन्नाथ पंडित

समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य
नमन प्रकाशन, नई–दिल्ली–११०००२
संस्करण :२००२

नामवर सिंह

इतिहास और आलोचना
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
१–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–११० ००२
तीसरा संस्करण: १९७८

परमानन्द श्रीवास्तव

समकालीन कविता का यथार्थ
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
पहला संस्करण:१९८८

पुरुषोत्तम अग्रवाल

संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध
राधाकृष्ण प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२
प्रथम संस्करण:१९९५

बलदेव वंशी

धरती हाँफ रही है
आर्य प्रकाशन मंडल, १/२२१, सरस्वती भंडार
गाँधीनगर, दिल्ली–११००३१
प्रथम संस्करण–२००७

मंगलेश डबराल

आवाज भी एक जगह है
वाणी प्रकाशन,
२१– ए, दरियागंज,
नई दिल्ली–११० ००२
प्रथम संस्करण: २०००

मंगलेश डबराल

कवि का अकेलापन
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
७/३१, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली–११० ००२
पहला संस्करण:२००८

रमणिका गुप्ता

भला मैं कैसे मरती
अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली–३२
प्रथम संस्करण, १९९७

राजेश जोशी

एक कवि की नोटबुक
राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण:२००४

रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य का इतिहास
लोकभारती प्रकाशन,
१५–ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद–१
प्रथम लोकभारती संस्करण:२००२

रामस्वरूप चतुर्वेदी

काव्य भाषा पर तीन निबन्ध
लोकभारती प्रकाशन
१५ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद–१ द्वारा प्रकाशित
तृतीय संवर्धित संस्करण:२००२

रेवतीरमण

समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य
नवनीत प्रकाशन, २३, हीवेट रोड़, इलाहाबाद–३
प्रथम संस्करण:१९९४

लीलाधर जगूड़ी

अनुभव के आकाश में चाँद
राजकमल प्रकाशन, नई–दिल्ली
पहला संस्करण १९९

लीलाधर मंडलोई

कविता का तिर्यक
मेधाबुक्स,
एक्स–११, नवीन शाहदरा,
दिल्ली–११००३२
प्रथम संस्करण:२००३

लीलाधर मंडलोई	काल बाँका–तिरछा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग नई–दिल्ली–११० ००२ पहला संस्करण:२००४
विधि शर्मा	कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा.लि.) ४६९७/३, २१–ए, अंसारी रोड, दरियागंज नई–दिल्ली–११० ००२
विश्वनाथ तिवारी	कविता क्या है राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड १–बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–११० ००२ पहला संस्करण: १९९९
विष्णुनागर	कविता के साथ–साथ मेधा बुक्स, एक्स–११, नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२ प्रथम संस्करण:२००४
श्याम कश्यप (सम्पादन)	हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी रोड, दरियागंज, नई–दिल्ली, ११०००२ पहला संस्करण:१९८६
शिवशंकर मिश्र	जनवादी कविता का संदर्भ यात्री प्रकाशन बी–१३१, गली नं २, सादतपुर दिल्ली–११००९४ प्रथम संस्करण:२००५

श्रीराम त्रिपाठी

धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता
ए–६७, तेजेन्द्र प्रकाश–१,
खोड़ियारनगर, अहमदाबाद–३८२३५०
प्रथम संस्करण:२००२

सोमदत्त

कोठार से बीज
मेधा बुक्स,
एक्स–११, नवीन शाहदरा,
दिल्ली–११० ०३२
प्रथम संस्करण: २००३

ज्ञानेन्द्रपति

भिनसार
किताबघर, प्रकाशन,
४८५५–५६/२४, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–११०००२
प्रथम संस्करण:२००६

कोश

लोकभारती
प्रामाणिक
हिन्दी कोश
सम्पादन:आचार्य रामचन्द्र वर्मा
लोकभारती प्रकाशन
१५–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–१
पुनर्मुद्रण:१९९८

पत्र–पत्रिकाएँ

आलोचना(कविता का भविष्य एक) (जनवरी–मार्च, सहस्राब्दी अंक बारह २००३)
प्रधान सम्पादक: नामवर सिंह
सम्पादक: परमानन्द श्रीवास्तव

आलोचना(कविता का भविष्य दो) (अप्रैल–जून, सहस्राब्दी अंक तेरह २००३)
प्रधान सम्पादक: नामवर सिंह
सम्पादक: परमानन्द श्रीवास्तव

वसुधा–६२(सितम्बर २००४), प्रधान सम्पादक: प्रो. कमला प्रसाद

संवेद १६ (अगस्त २००७), संपादक: किशन कालजयी

समयांतर(फरवरी २००८), संपादक: पंकज बिष्ट